पानमल सेठिया
Panmal Sethia

विषयानुक्रम

हिन्दी बाल शिक्षा

(छठा भाग)

पाठ पहला

(२)

करमभरमजगतिमिरहरनखग
उरगलखनपग शिवमगदरसि ।
निरखत नयन भविक जल बरषत,
हरषत अमित भविकजन सरसि ॥
मदन कदन जित परम धरम हित,
सुमिरत भगत भगत सब डरसि ।
सजल जलद तन मुकुट सपत फन,
कमठदलन जिन नमत 'बनरसि' ॥

पाठ दूसरा

वह दिन !

(गद्य काव्य)

शब्दार्थ

दुपहर- दिन का मध्यभाग । काकली- ध्वनि । प्रभा- भगवान महावी[र] निर्दिष्ट वाणी । हिया- हृदय । नगण्य- नाचीज, तुच्छ । विमान- देवता[ओं] कुण्डपुरि- भ० महावीर का जन्मस्थान । समष्टि- समुदाय, समेत । पश्चा[त्ताप] पीड़ा हुआ हुआ । मोथरी- मोटी धार वाली । दईमारी- अभागिनी । उम्मीद [...] दूध [...] उड़ने वालों ।

उस दिन बड़ी शुद्ध निशा थी । गगन से कज्जल की वर्षा हो रही थी । पूर्वाकाश में दिनानाथ की अगवानी के अभी तक लाल गलीचा न बिछाया गया था । प्रातः की

नाओं की आँखें गड़ गईं। मस्तक पर तिलक लगाने के लिए पावा की धूल को अमरावती ले भागी।

पावा! क्षुद्र पावा!! आज तुझे क्या हो गया था! आज ही तू रङ्क से राजा क्यों हो गई थी? कैसे हो गई थी? आज विश्व की विख्यात नगरियाँ तुझ से क्यों ईर्ष्या करने लगी थीं? बता अभिमानिनी! आज ही, क्षण भर में, चरणों के नीचे दबने वाली कंकरी से, मस्तक पर धारण करने योग्य मणि, तू कैसे बन गई थी! बता छलिनी, यह क्या था! माया थी! स्वप्न था! या भ्रम था!

नहीं पावा, न वह माया थी, न स्वप्न था, न भ्रम था। पतित-पावन प्रभु ने अपने विरद की रक्षा के लिए, विश्व की महापुरियाँ त्याग कर अपने निर्वाण के लिए तुझे ही चुना था। *दीनबन्धु भगवान् ने, हीना दीना पावा! तुझे अपनी निर्वाण भूमि* बनाकर वह सम्मान दिया था—जो अमरावती को तो मिलना क्या, मुक्ति नगरी के लिए भी एक बार असंभव है।

सार्वभौमी वर्द्धमान ने गहरे गड्ढे से उठा कर तुझे शिखर पर खड़ा किया। क्षुद्र गलियों से बढ़ाकर उस वर्द्धमान ने तुझे महा नगरों में पलट दिया। उस वीर और महावीर कहलाने वाले दुर्बलत्राण प्रभु ने अजेय कर्म शत्रुओं को तेरे ही रण क्षेत्र में सम्पूर्ण पराजित करके तुझे चिरन्तन यशस्विनी बना दिया—तुझे इतिहास में चिर स्थिर-अजर अमर कर दिया।

पावा! तेरा जैसा सौभाग्य हर कहाँ से पाए! आज थोड़ी बहुत नहीं किन्तु पञ्चविंशति शताब्दियों से भारत क्षेत्र की नगरी नगरी तेरा अनुकरण कर रही है। ठीक इसी दिन, जब तू स्या-

यह कहने का साहस किस बिरते पर करेगी ? इसलिए कि हम लोग आज तक दिवाली मनाते हैं ? नहीं बाबा, यह तो रूढ़ि है। जहाँ से ज्ञान चल देता है— वहां रूढ़ियां निवास करती हैं। हम रूढ़ियों के अनन्य भक्त हैं। हमारी दीवाली वास्तव में तेरी याद नहीं, नातपुत्त की स्मृति नहीं, वास्तव में धर्म की प्रभावना नहीं। वह है रूढ़ि और प्रबल रूढ़ि। यदि हम वर्द्धमान को न भूले होते तो हम में आज समानता होती। भगवान् का दरबार नीचातिनीच से लेकर उच्चातिउच्च के लिए उन्मुक्त होता। हम परस्पर में न कटते मरते और अकाम, अक्रोध, अलोभ, और अमात्सर्य आदि के आदर्श उदाहरण होते। हम सिद्धान्तों और न्याय पर मर मिटने वाले होते। हम न देखते जाति का बनावटी भय, हम न देखते राज्य की अन्यायी धारायें, हम न देखते समाज का झुकाव और हम न देखते विरोध और अपमान की आशंका। क्या कहती हो बाबा, पर आज हम सब देखते हैं। भूल गए बाबा! पावन भगवान और उनके धर्म को भूल गये। आत्मा और आत्म-धर्म को भूल गये। सर्वांगीन नाश की ओर जा रहे हैं, अनन्त जन्म-मरण के गड्ढे में गिरने जा रहे हैं। जाने न दो बाबा, हईमारी ! तुम्हारा क्या बिगड़ता है ? तुम क्यों बरबस आज के दिन अपनी ओर खींचती हो। क्या हम में से भी किसी को वर्धमान बनाने का विचार है? बात तो कुछ बुरी नहीं है, पर कृपा करके इसके लिए किसी पतित पर अपना आकर्षण चलाओ, और कोई न मिले तो सुधार-सुधार चिल्लाने वाले उत्सुकियों को ही अपनी आकर्षिणी क्रिया का लक्ष्य बनाने के लिए पकड़ लो, तो तुम्हारे सिर की सौगंध बाबा, निष्कण्टक राज्य हो जाय। हाय बाबा! हाय वर्द्धमान !! हाय तुम्हारा मुक्ति-दिवस !!!

पाठ तीसरा

युगादि भगवान ऋषभ

शब्दार्थ

कोड़ाकोड़ी- एक करोड़ का एक करोड़ से गुणा करने पर जो फल आवे, वह। भरत- जैन ग्रन्थों में प्रसिद्ध एक बड़ा [illegible] क्षेत्र। अवान्तर- विभि-भेदों के भेद, प्रभेद। दुर्भिक्ष- रहित। भोगभूमि- ऐसी भूमि, जिसमें वृक्षों से सब आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं। कर्मभूमि- जिसमें जीवन-निर्वाह के लिए कृषि व्यापार आदि कर्मों की आवश्यकता होती है। प्रवह-मान। कुलकर- मर्यादा बाँधने वाले महापुरुष। पूर्व- चौरासी लाख पूर्वांग प्रमा-[illegible]- मुकुट, मुकुट। कलाप- समुदाय। संनिहित- समीप। लोकपाल- रक्षक। आखण्डल- [illegible]। मण्डल- देश, मंडल। [illegible]- [illegible]। [illegible]- [illegible]। पीठिका- मूर्ति स्थापनी। इक्षु- ईख। शिल्प- हस्त कला। ईंधन- जंगल [illegible] और घास।

सृष्टि अनादि और अनन्त है। न कभी यह उत्पन्न हुई न विनष्ट होगी। किन्तु काल आदि से प्रभावित होकर परिवर्तित होती रहती है।

काल के दो स्थूल विभाग हैं—१ उत्सर्पिणी, २ अवसर्पिणी। जिसमें सदाचार, बुद्धि, बल, आयु आदि का उत्तरोत्तर विकास होता जाता है उस उन्नतिशील काल को उत्सर्पिणी और जिसमें उपर्युक्त सदाचार आदि का उत्तरोत्तर ह्रास होता रहता है उसे

१ भरत और ऐरावत क्षेत्र में ही ये भेद होते हैं, अन्य क्षेत्रों में नहीं।

अवसर्पिणी काल कहते है। दोनों कालों का परिमाण दस २ कोड़ाकोड़ी सागर का है। प्रत्येक के छह-छह अवान्तर विकल्प हैं। उत्सर्पिणी के छह विकल्प ये हैं—(१)दुषमदुषमा (२) दुषमा (३) दुषम सुषमा (४) सुषम दुषमा (५) सुषमा (६) सुषम सुषमा। इन्हीं विकल्पों को बिलकुल विपरीत क्रम से सन्निविष्ट कर देने से अवसर्पिणी के छह विकल्प बन जाते हैं। दोनों काल दो चक्रों के सदृश है, अतएव ये अवान्तर विकल्प 'आरा' कहलाते हैं। तीसरे और चौथे आरा में ही त्रेसठ महापुरुष उत्पन्न हुआ करते हैं, जिन्हें हम 'त्रेसठ शलाका पुरुष' कहते हैं।

आजकल अवसर्पिणी काल है। इस काल के तीसरे आरे में जब अन्तिम कुलकर महाराज नाभिराय थे तब भोगभूमि नष्टप्रायः होकर कर्म भूमि का आरम्भ हो रहा था। जीवन-यापन के लिए व्यापार प्रभृति प्रयासों की परमावश्यकता थी किन्तु उस समय के लोग व्यावहारिक कृत्यों से नितान्त अनभिज्ञ थे। भूख लगी, पर शान्त करने का कोई उपाय न सूझा। कल्पवृक्ष अदृश्य हो चुके थे, और कोई उपाय न था। वे भगवान ऋषभ के पास गये। उन्होंने जीवनोपयोगी सब प्रकार का उपदेश दिया। वृक्षों के रक्षण की, धान्य के उपयोग की, रोग की चिकित्सा की सन्तान के पालन-पोषण की विधि बताई। इस प्रकार आजीविका के साधन जान कर सब अपने-अपने निर्वाह में लग गये।

महाराज श्री नाभिराय से प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव उत्पन्न हुए थे। जब ऋषभदेव मरुदेवी के गर्भ में आये, उससे पन्द्रह महीने पहले ही इन्द्र ने आकर महाराज नाभि के लिए एक सुन्दर नगर बसाया था। उसका नाम अयोध्या पड़ा। आज कल

पुत्र बाहुबली हुए। बाहुबली बहुत बली थे। जब भरत चक्रव भरतक्षेत्र के छहों खंडों पर विजय-ध्वजा फहरा चुके, तब उन्हों इन्हें भी भेंट देने को कहा, पर ये न माने। दोनों का परस् युद्ध हुआ। बाहुबली ने चक्रवर्ती को पछाड़ कर नीचा दिखाय किन्तु उन्हें तत्काल ही वैराग्य हो आया और अशेष परिग्र राज्यश्री तथा प्रभुत्व का परित्याग कर उन्होंने मुनिवेष धार किया। इससे उनकी निस्पृहता, आत्म-गौरव, वीरता औ धार्मिकता का पता लगता है।

इनके सिवाय महारानी सुनन्दा से 'सुन्दरी' और सुमङ्ग से 'ब्राह्मी' नाम की कन्याओं का भी जन्म हुआ था। भगवा के और भी अनेक पुत्र रत्न उत्पन्न हुए थे।

भोगभूमि होने से उस समय तक पठन-पाठन आ की भी व्यवस्था नहीं थी। भगवान् विविध कला-कलाप औ विद्याओं को प्रचलित करना चाहते थे। उसी समय दोन कन्याएँ उनके सन्निकट आईं। भगवान् ने उन्हें कला और विद का महत्त्व बतलाकर मौखिक शिक्षा देना आरम्भ किया। 'अ, आ आदि अक्षर, इकाई, दहाई आदि गिनती सिखाई। फिर सुन्दरी व लिपि अर्थात् व्याकरण, छन्द, न्याय, काव्य, अलंकार आदि औ ब्राह्मी को गणित विषय सिखलाया। दोनों पुत्रियों को पढ़ान के बाद भरत आदि पुत्रों को भी पढ़ाया। यद्यपि उन्होंने प्रत्ये पुत्र को अनेकानेक विषयों में विद्वान् बनाया था तथापि प्रत्ये का विशेष विषय एक सरीखा ही नहीं था- भिन्न २ था।

भगवान् ऋषभदेव युगादि महापुरुष थे। उन्हें अपने जीव व्यवहार के आदर्श से अन्य लोगों को जीवन-व्यवहार की शिक्ष देनी थी। अब यह उनके प्रत्येक कार्य के विषय में कहना है

क्या है ? , प्रत्येक महापुरुष के कार्यों में विशेष उपयोगी और आदर्श तत्त्व सन्निहित रहते हैं। वे शाब्दिक उपदेश की अपेक्षा अपने जीवनादर्शों से ही दूसरे के सामने उपदेश-प्रकाश फैलाते हैं। वस्तुतः क्रियात्मक उपदेश की ही अधिक और स्थायी छाप पड़ती है, वाचिक उपदेश की नहीं। इस नियम के अनुसार ऋषभदेव के शिक्षा सम्बन्धी विचार उनके कार्य से अवगत हो सकते हैं।

भगवान् ने सर्व प्रथम पुत्रियों को शिक्षा दी थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे स्त्री शिक्षा को भी आवश्यक और प्रधान समझते थे। उन्होंने भिन्न-भिन्न पुत्रों को यथायोग्य भिन्न-भिन्न विषयों में दक्ष किया था। इस आदर्श पर विचार करने से प्रतीत होता है कि विद्यार्थी की स्वाभाविक रुचि और बुद्धि की परीक्षा करके ही उसे किसी विषय का अध्ययन कराना चाहिए। ऐसा न करने से शिष्य की बुद्धि उस विषय को ग्रहण नहीं कर सकती, अतः वह सभी विषयों में कोरा रह जाता है।

भगवान् ने पहले-पहल मौखिक शिक्षा दी थी। यही प्रणाली उत्तम है। प्रारंभ में पुस्तकों का बोझ लाद देने से बच्चों की बुद्धि का विकास नहीं होता, प्रत्युत वह दब जाती है— उसका पैनापन मोथरेपन में परिणत हो जाता है। थोड़ी सी अग्नि पर भारी ईंधन लादने से वह बुझ जाती है। अपनी संतान को भगवान् ने स्वयं शिक्षा दी थी। इससे यह विदित होता है कि बालक-बालिकाओं की प्रारम्भिक शिक्षा माता-पिता द्वारा घर पर ही होनी चाहिए। भगवान् के शिक्षा-विषयक मन्तव्य महत्त्वास्पद और उत्तम हैं।

भोगभूमि के अभाव से जब कल्पवृक्ष सूखने लगे तो प्रजा में हलचल मची । बहुत से लोग मिलकर फिर महाराज नाभिराय की शरण में पहुँचे । उन्होंने लोगों को भगवान् ऋषभदेव के पास भेज दिया। उसी समय भगवान् का राज्याभिषेक हुआ। भगवान ने सब व्यवस्था करवाई । देशों को बसवाया, उन्हें यथायोग्य विभागों में विभक्त कराया । प्रत्येक देश का एक-एक राजा नियुक्त किया गया । राज्य के बीचोंबीच राजधानी बनाई गई । कांटों की बाड़ से घिरे हुए केवल सौ घर जहां बनाये गये थे, उसे छोटा गांव-खेड़ा संज्ञा दी गई और जहां पांच सौ घर बनाये गये थे उसे कसबा संज्ञा दी गई । छोटे गांव की सीमा एक कोश और बड़े गांव की दो कोश की नियत हुई । यह सीमा श्मशान, नदी, वट, बबूल, पर्वत, गुफा आदि से बांधी गई थी । गांव बसाना उचित नियम बनाना, प्रजा की आवश्यकताओं की पूर्ति करना आदि कार्य राज्य के अधिकार में किये गये । इत्यादि-इत्यादि प्रजा-निर्वाह योग्य सुखकर नियम निर्धारित हुए ।

राज्य-व्यवस्था हो चुकने पर श्रीमान् ऋषभदेव ने प्रजा को शस्त्रधारण, कृषि, लेखन, व्यापार और शिल्पकला आदि की शिक्षा दी । उस समय जो अधिक शूरवीर थे, शस्त्र चलाने में कुशल थे, प्रजा की रक्षा कर सकते थे, उन्हें क्षत्रिय संज्ञा दी गई । जो व्यापार कृषि और पशुपालन करने में निपुण थे वे वैश्य कहलाए । जिन्होंने सेवा-वृत्ति स्वीकार की उनकी शूद्र संज्ञा हुई । सर्वप्रथम क्षत्रिय आदि की व्यवस्था आजीविका के आधार से ... महाराज ने बाद में की थी, थी । ... सम्राट् पद से विद् ... उन्होंने शासन ... किये गये ।

भोगभूमि के अभाव से जब कल्पवृक्ष सूखने लगे तो प्रजा में हलचल मची। बहुतेरे लोग मिलकर फिर महाराज नाभिराय की शरण में पहुँचे। उन्होंने लोगों को भगवान् ऋषभदेव के पास भेज दिया। उसी समय भगवान् का राज्याभिषेक हुआ। भगवान् ने सब व्यवस्था करवाई। देशों को बसवाया, उन्हें यथायोग्य विभागों में विभक्त कराया। प्रत्येक देश का एक-एक राजा नियुक्त किया गया। राज्य के बीचोंबीच राजधानी बनाई गई। कांटों की बाड़ से घिरे हुए केवल सौ घर जहां बनाये गये थे, उसे छोटा गाँव-खेड़ा संज्ञा दी गई और जहाँ पाँच सौ घर बनाये गये थे उसे कसबा संज्ञा दी गई। छोटे गांव की सीमा एक कोश और बड़े गांव की दो कोश की नियत हुई। यह सीमा श्मशान, नदी, वृक्ष, बबूल, पर्वत, गुफा आदि से बांधी गई थी। गांव बसाना, उचित नियम बनाना, प्रजा की आवश्यकताओं की पूर्ति करना आदि कार्य राज्य के अधिकार में किये गये। इत्यादि-इत्यादि प्रजा-निर्वाह योग्य सुखकर नियम निर्धारित हुए।

राज्य-व्यवस्था हो चुकने पर श्रीमान् ऋषभदेव ने प्रजा को शस्त्रधारण, कृषि, लेखन, व्यापार और शिल्पकला आदि की शिक्षा दी। उस समय जो अधिक शूरवीर थे, शस्त्र चलाने में कुशल थे, प्रजा की रक्षा कर सकते थे, उन्हें क्षत्रिय संज्ञा दी गई। जो व्यापार कृषि और पशुपालन करने में निपुण थे वे वैश्य कहलाए। जिन्होंने सेवा वृत्ति स्वीकार की उनकी शूद्र संज्ञा हुई। सर्वप्रथम क्षत्रिय आदि की व्यवस्था आजीविका के आधार से हुई थी। ब्राह्मण वर्ण की स्थापना भरत महाराज ने बाद में की थी।

कुछ दिन पश्चात् भगवान् ऋषभदेव सम्राट् पद से विभूषित किये गये। सम्राट् पद प्राप्त करके उन्होंने शासन सम्बन्धी

नियम सुप्रचलित किये। इस भाँति लौकिक व्यवस्था करने के कारण प्रजा उन्हें विधाता, स्रष्टा, विश्वकर्मा आदि नामों से पुकारती थी।

भगवान् का मानस-पयोनिधि वैराग्य-पय-परिपूरित रहता ही था किसी घटना-वात ने उसे तरंगित कर दिया। उन्हें संसार की निस्सारता का अनुभव होने लगा। लौकान्तिक देव आकर भगवान् की स्तुति करने लगे। उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा से दीक्षित होने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

इस प्रकार सांसारिक और सामाजिक कार्यों से निवृत्त कर भगवान् दीक्षा लेने के लिए वन को जाने लगे तो प्रजा को अत्यन्त खेद हुआ। भगवान्‌ने दीक्षा अंगीकार करली। देवों और देवेन्द्रों ने खूब उत्सव मनाया। भगवान् के साथ और भी चार हजार राजाओं ने दीक्षा स्वीकार की थी। भगवान् आहार आदि का परित्याग कर मौनावलम्बन पूर्वक तपस्या करने लगे। उन्हें अपने भोजन-पान की तनिक भी चिन्ता न थी। उनके साथी राजा लोग अलौकिक आत्मिक आनन्द का अनुभव तो कर ही न सके थे, केवल भगवान् के असह्य विरह से कातर हो कर उनके पीछे चल दिये थे। उनके शरीर क्षुधाग्नि से जलने लगे। वड़-वानों की भाँति ने घर का द्वार बन्द कर दिया। इस परिस्थिति में उन्होंने सोचा—'न भगवान् स्वयं कुछ खाते-पीते हैं न हमें खाने पीने को कहते हैं। हम लोग बड़े संकट में पड़ गये हैं। स्वयमेव कुछ प्रबन्ध करना चाहिए।' यह विचार कर किसी ने जंगली फल-फूलों से अपने उदरदेव को सन्तुष्ट किया, किसी किसी ने दूसरे उपायों का अवलम्बन किया। भगवान् के मन में रहते हुए उनके ये आचरण जनता में अप्रतिष्ठा के कारण होते,

अतएव उन्होंने अपनी मलीमस प्रवृत्तियों पर धार्मिकता की ओप करने का निश्चय किया और तरह तरह के भेष बना कर अपना निर्वाह करने लगे।

भारतवर्ष में विभिन्न धार्मिक मान्यताओं का इतिहास इसी समय से प्रारम्भ होता है। श्री ऋषभ देव के समय से लेकर अब तक भिन्न भिन्न मतों की स्थापना और समाप्ति हुई है। कहते हैं धार्मिक विभिन्नता के परम काल में भगवान के समय में—ही तीन सौ त्रेसठ मत स्थापित हो चुके थे। इस विभिन्नता के मूल में दो तत्त्व सन्निहित हैं—(१) ज्ञान शक्ति की न्यूनता और (२) चारित्र की न्यूनता। जब सर्वज्ञ या अन्य कोई दिव्यदृष्टा किसी अदृष्ट पदार्थ की सत्ता या उसके अन्य गुणों (धर्मों) के विषय में कुछ कहते हैं, तब श्रद्धाविहीन साधारण ज्ञानियों के विकृत मस्तिष्कों में उस कथन का प्रवेश नहीं होता। इस अवस्था में उनकी अपनी परिमित मति में जितने और जैसे पदार्थ प्रतिभासित होते हैं, वे उन्हीं और वैसे ही पदार्थों की कल्पना कर बैठते हैं। मत-विभिन्नता का पहला हेतु यही है। दूसरा है चारित्र की न्यूनता। मनुष्य यह जानता है कि अमुक चारित्र का प्रकार अमुक है, लेकिन उसमें उसके अनुकूल प्रवृत्ति करने की शक्ति नहीं होती या कम होती है, और सर्वसाधारण के समक्ष चारित्रविहीन कहला कर रहना पसन्द नहीं करता तब यह चारित्र का मनःकल्पित दूसरा प्रकार उपस्थित कर देता है। वह उसके अनुसार पूर्ण चारित्रवान बनने की चेष्टा करता है। कहना न होगा कि यह अपनी मान्यता पर मौलिकता की छाप लगाने के लिए अन्यान्य सिद्धान्तों को भी उलट पलट देता है और कुछ दिनों बाद यह एक स्वतन्त्र ही मत बन जाता है।

प्रमाणोपेत इतना और समझ लेना चाहिए कि धर्म के मुख्य दो अंग हैं-(१) तत्त्वविज्ञान और (२) आचरणवाद। इनमें से ज्ञान-शक्ति की न्यूनता का प्रधानतः प्रभाव तत्त्वविज्ञान पर पड़ता है और आचरणशक्ति की न्यूनता का आचरणवाद पर। भगवान् ऋषभदेव के समय की मतविभिन्नता के भी यही कारण है।

इस तरह भारतवर्ष का सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास भगवान् के समय से आरंभ होता है।

भगवान् बारह महीनों तक समाधि युक्त तपस्या करते रहे। उनकी आत्मिक शान्ति का प्रभाव वन्य पशुओं पर इतना अधिक हुआ कि सिंह और मृग तक उनके समीप एक साथ मैत्री भाव से रहने लगे। ठीक है, प्रत्येक घटना का प्रभाव वायु आकाश और आसपास के व्यक्तियों पर पड़ता है। भगवान् की लोकोत्तर शान्ति का प्रभाव उनकी तपोभूमि पर हुआ और वन्य पशुओं पर भी।

बारह मास व्यतीत होने पर भगवान् ने आहार के लिए नगर में प्रवेश किया। उस समय कोई साधुओं को दान देने की विधि न जानता था। उन्हें निर्दोष आहार की प्राप्ति न हो सकी। पश्चात् राजा श्रेयांस ने अपने जातिस्मरण ज्ञान से जान कर निर्दोष आहार—इक्षु-रस दिया। इस प्रकार की तीव्र तपस्या करते २ भगवान् को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उसके पश्चात् की घटनाएँ जैसे समवसरण की रचना, उपदेश देना, चतुर्विध संघ की स्थापना करना, आदि, भगवान् महावीर के जीवन में बतलाई जा चुकी हैं। भगवान् के पहले गणधर उनके पुत्र वृषभसेन और सब से पहली आर्यिकायें भगवान् की दोनों पुत्रियाँ ब्राह्मी तथा सुन्दरी हुई थीं।

भगवान् नाभिनन्दन ने इस अवसर्पिणी काल में भोगभूमि के पश्चात् अपने जीवन की प्रत्येक क्रिया से संसार के सामने नये-नये आदर्श उपस्थित किये। गृहस्थावस्था में समाज और राज्य की स्थापना की, उनकी व्यवस्था की, विवाह-संस्कार की नींव डाली, सन्तान-शिक्षा की शिक्षा दी, विविध विषयों के ज्ञान का प्रचार किया, लिपि का निर्माण किया। दीक्षित होने पर धर्म का प्रकाश फैलाया।

भगवान का जीवन चरित्र धर्म, इतिहास तथा अन्य प्रत्येक दृष्टि से परम कल्याणकारी है। उसका गंभीर अध्ययन किये बिना भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास लिखना इतिहास-विपर्यास के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। भगवान् के चरित्र की महत्ता का ही यह परिणाम है कि वैदिक धर्मावलम्बियों ने अपने चौबीस अवतारों में उन्हें नववाँ अवतार स्वीकार किया है। भागवतपुराण में लिखा है—"भगवान् ने जो उपदेश दिया था, वह वेदों में वर्णित है।" इससे भगवान् के उपदेश की उत्कृष्टता और वेदों से पूर्वकालीनता सिद्ध होती है। जब श्रीऋषभदेव वेदों से प्राचीन हैं तो जैनधर्म का प्राचीन होना स्वयं सिद्ध है। यों तो जैनधर्म अनादिकाल से है और अनन्त काल तक रहेगा, क्योंकि सत्य अनादि अनन्त है, और जैनधर्म पूर्ण सत्य से भिन्न नहीं है।

भगवान् नाभिनन्दन का जीवन जगत के समस्त अन्याय पाप और अत्याचार रूपी कीचड़ को धो कर जीवों का जीवन पावन बनाये।

पाठ चौथा

दुःख और विपत्ति से शिक्षा.

भान- प्रतीत, ज्ञान। प्रतिकार- उचित उपाय, चिकित्सा। अवज्ञाकारी- अविनयी, तिरस्कार करने वाला। परिवृत्त- परिवर्तित, बदला हुआ। सामग्री- साधन।

दुःख, शोक और अशान्ति जीवन के साथ लगे हुए हैं। दुनिया में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है, जिसके हृदय में कभी दुःख का काँटा न चुभा हो, जिसने कभी आपत्ति के गहरे समुद्र में गोते न लगाए हों और कभी असह्य दुःख से जलते हुए आँसू न बहाये हों। कोई ऐसा घर नहीं, जिसमें रोग और मृत्यु रूपी भयङ्कर शत्रुओं ने प्रवेश न किया हो, और एक हृदय को दूसरे हृदय से पृथक् न किया हो तथा दुःख और शोक की घटा न फैला दी हो। संसार में जितने प्राणी हैं-थोड़े बहुत-सभी किसी न किसी दुःख में ग्रसित हैं। किसी को कोई दुःख है किसी को कोई। नानक ने ठीक ही कहा है—

" नानक दुखिया सब संसार।
सो सुखिया जिस नाम अधार।"

इन दुःखों से छुटकारा पाने के लिए अथवा इन्हें किसी भाँति कम करने के लिए लोग भाँति भाँति के उपाय करते हैं और सुख की प्राप्ति के लिए विविध मार्गों का अवलम्बन करते हैं। कोई धनसम्पत्ति में, कोई विषय सेवन में और कोई धर्माचरण

में ही सुख का अन्वेषण करते हैं। सारांश- प्रत्येक मनुष्य अपने अपने विचारानुसार भिन्न भिन्न साधनों से सुख की प्राप्ति करना चाहता है और उसी से सांसारिक दुःखों से मुक्त होने की अभिलाषा रखता है।

कुछ समय के लिए ऐसा भास होता है कि जिस सुख की प्राप्ति के लिए मनुष्य ने उद्योग किया था वह उसे मिल गया। उसकी आत्मा उस सुख में निमग्न हो जाती है और क्षण भर के लिए अपने सम्पूर्ण कष्टों को भूल जाती है, परन्तु हाय! शीघ्र ही कोई न कोई रोग या शोक उस पर आक्रमण कर बैठता है या कोई भारी आपत्ति अकस्मात् आ पड़ती है, जो उसके कल्पित सुख को खाक में मिला देती है।

इस प्रकार मनुष्य के प्रत्येक सुख का विच्छेद करने के लिए दुःख की तीक्ष्ण तलवार सदैव उसके सिर पर लटकी रहती है और जो मनुष्य ज्ञानशून्य है, उस पर गिरकर उसे छिन्न भिन्न कर देती है।

निर्धन मनुष्य अपनी निर्धनता के बन्धन में जकड़ा हुआ है, धनवान को सदैव दीनता के चंगुल में फँस जाने का भय लगा रहता है। कभी कभी आत्मा को यह अनुभव होने लगता है कि अमुक सत्य धर्म का ग्रहण करने, अमुक सिद्धान्त को स्वीकार करने अथवा अमुक आदर्श को हृदय में स्थापित करने से उसे अक्षय सुख और शान्ति की प्राप्ति हो गयी है, परन्तु पीछे किसी भारी क्षोभ के वशीभूत आत्मा को वही धर्म असत्य और अपूर्ण प्रतीत होने लगता है, वही सिद्धान्त निरर्थक ज्ञात होता है और वही आदर्श, जिसकी उपासना वह वर्षों से कर रहा है, क्षण भर में खण्ड खण्ड होकर उसके पैरों में गिर पड़ता है।

प्रत्येक दुःख और विपत्ति का प्रतिकार किया जा सकता है, इसलिए यह सदैव बनी नहीं रह सकती है। दुःख का मूल अज्ञान है; अर्थात् संसार के पदार्थों को और उनके सम्बन्ध को ठीक ठीक न समझना ही अविवेक है। जब तक हम में इस प्रकार का अज्ञान रहता है, तब तक हम विपत्ति के शिकार बने रहते हैं। दुनिया में जितना दुःख और क्लेश होता है, सब अज्ञान से। यदि मनुष्य दुःख और विपत्ति से शिक्षा ग्रहण करें, तो दुःख आप नाश हो सकता है और विपत्ति भी स्वयमेव दूर हो सकती है, परन्तु विपत्ति शिक्षा देने के लिए आती है, जो लोग विपत्ति से शिक्षा ग्रहण नहीं करते, विपत्ति उनका पीछा नहीं छोड़ती।

हमें एक बच्चे का हाल मालूम है कि रात्रि के समय उसकी माँ उसे सोने के लिए ले जाती थी, तो वह चिराग के साथ खेलने के लिए बड़ा चिल्लाता था। एक रात्रि को जब उसकी माँ थोड़ी देर के लिए उसे अकेला छोड़कर बाहर चली गई तो उसने अज्ञान के कारण दीपक की शिखा छू ली। परिणाम वही हुआ, जो होना था। उसका हाथ जल गया; परन्तु उस दिन से फिर कभी बच्चे ने दीपक से खेलने की इच्छा नहीं की। उसने अपने ही अज्ञान से आज्ञा पालन का पाठ सीख लिया और उसे यह भी ज्ञान हो गया कि आग का गुण जलाने का है। इसी एक घटना से सम्पूर्ण दुःख और विपत्तियों का गुण, स्वभाव, ज्ञान और अन्तिम परिणाम मालूम हो सकता है। जिस प्रकार बालक ने अग्नि के गुण की अनभिज्ञता के कारण दुःख उठाया, उसी प्रकार बड़ी अवस्था वाले भी इस कारण से दुःख उठाते हैं, कि जिन वस्तुओं के लिए वे रोते हैं और जिनको लेने का वे उद्योग करते हैं उनके गुण और स्वभाव से वे अपरिचित हैं।

और इसीलिए जब वे वस्तुएं उन्हें मिल जाती हैं, तो हानि उठाते हैं
अन्तर केवल इतना है कि बड़ी अवस्था के बच्चे में दुःख औ
अज्ञान बहुत जड़ पकड़ लेता है और छिपा रहता है।

संभव है, कुछ मनुष्य कह बैठें कि फिर तुम विपत्ति
अंधेरे से गुजरते ही क्यों हो? इसका उत्तर यह है कि अज्ञा
के कारण तुमने स्वयं ऐसा करना पसन्द किया है और ऐस
करने से तुम्हें सुख और दुःख दोनों का अच्छी तरह से ज्ञान हो
जायगा और दुःख पड़ने के कारण फिर तुम सुख को अधि
पसन्द करने लगोगे। दुःख अज्ञान से होता है, इसलि
जब तुम उसे अच्छी तरह सीख और समझ लोगे, तब य
अन्धेरा दूर हो जायगा और उसके स्थान में सत्यज्ञान क
प्रकाश हो जायगा। परन्तु जिस प्रकार एक हठी और अयज्ञाकारी
विद्यार्थी अपने स्कूल के पाठ को याद नहीं करता उसी प्रका
यह भी सम्भव है कि तुम अनुभव से शिक्षा ग्रहण न करो औ
अज्ञान के अंधकार में पड़े रहो तथा रोग, शोक एवं निराश
के रूप में निरन्तर दण्ड भोगते रहो। जो लोग अपने को विप
से मुक्त करना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे पाठ सीखने औ
शिक्षा ग्रहण करने के लिए सदैव तय्यार रहें और उस रीति क
अनुकरण करें जिससे ज्ञान, सुख और शान्ति की प्राप्ति हो।

विपत्ति थोड़े दिनों के लिए आती है और यह तुम्हारे
कर्मों के फल की सूची है। तुम पर जितने दुःख और कष्ट आते हैं, वे स
ब, कष्ट और विपत्तियाँ नियम के अनुसार आते हैं। तु
उनके योग्य हो और तुम्हें उनकी आवश्यकता है कारण कि उन
सहन करने से और उनको अच्छी तरह समझ लेने से तु

अधिक बलवान्, ज्ञानी, सहिष्णु और सभ्य बन जाओगे। जब तुम्हें इसका भलीभाँति ज्ञान हो जायगा, तब तुम स्वयं अपनी दशा को सुधार सकते हो, दुःखों को सुखों में परिणत कर सकते हो और अपने जीवन के लिए आवश्यक सामग्री संग्रह कर सकते हो।

अब प्रश्न यह है कि इस दुःख और शोक से छुटकारा पाने के लिए क्या कोई भी उपाय नहीं है, जो आपत्ति के बन्धन को काट सके? क्या अक्षय सुख और शान्ति का विचार करना भी अज्ञानता है? नहीं, ऐसा नहीं है। एक उपाय है, जिससे सदैव के लिए दुःख, रोग और शोक का काला मुंह किया जा सकता है, निर्धनता का नाश हो सकता है और ऐसे अक्षय और अनन्त सुख की प्राप्ति हो सकती है कि फिर कभी विपत्ति या दुःख के आने का भय ही नहीं रह सकता। वह उपाय यह है कि पहले दुःख और आपत्ति का समुचित ज्ञान प्राप्त किया जाय और उसकी वास्तविकता का पता लगाया जाय।

दुख को भुलाना या उससे बेसुध होना ठीक नहीं है। आवश्यकता यह है कि उसे अच्छी तरह समझा जाय। बहुधा देखा जाता है कि मनुष्य आपत्ति के आने पर नाना यत्न किया करते हैं, जिससे उनका क्लेश दूर हो जाय, परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। पहले यह जानना चाहिए कि उनके ऊपर क्या आपत्ति आयी और उससे उनको क्या शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए?। जिन बन्धनों में तुम जकड़े हो, उनपर क्रोध करना अथवा बिड़चिड़ाना व्यर्थ है। उचित यह है कि तुम इस बात का पता लगाओ कि क्यों और किस भाँति इस विपत्ति-जाल में आ पड़े?। तुम अपने को दुनिया के इस गोरखधन्धे से

निकाल कर अपनी अवस्था को अच्छी तरह सोचो और समझो।

तुम्हें अनुभव रूपी स्कूल में हठी लड़के की भांति नहीं रहना चाहिए, किन्तु धैर्य और नम्रता के साथ उन पाठों को सीखना चाहिये, जो तुम्हारे हित के लिए और तुम्हें उच्च अवस्था में पहुंचाने के लिए प्रकृति द्वारा दिये जाते हैं, क्यों कि विचार करने से मालूम हुआ है कि दुःख या आपत्ति इस संसार में कोई अनन्त या अपरिमित शक्ति नहीं है, किन्तु मानवीय अनुभव की एक क्षणिक अवस्था है और इस कारण से जो लोग सीखना चाहते हैं, उन के लिए यह गुरु या शिक्षक के तुल्य है। संसार में दुःख या आपत्ति तुम से कोई पृथक् वस्तु नहीं है; किन्तु तुम्हारे हृदय का एक अनुभव है, और जब तुम धैर्य के साथ अपने हृदय की अच्छी तरह से परीक्षा करोगे और उसे सन्मार्ग पर लाओगे, तो तुम्हें धीरे-धीरे इस बात का पता लग जायगा कि विपत्ति क्यों और कैसे आई? तब तुम उसका अवश्य समूल नाश कर सकोगे।

पाठ पाँचवाँ

बुकर टी० वाशिंगटन

प्रतीत-ज्ञात, विदित। अन्तस्तत्त्व-भीतरी भाव, रहस्य। अन्तर्निहित-भीतर छुपा हुआ। पैर दिखाये (ला-दिया उन्न किये। विषम-समान

इतनी चमकी कि तृतीय जार्ज के शासनकाल में पचास-पचास हज़ार हबशियों का विक्रय होने लगा। वहाँ इनका बाज़ार लगता था। झुण्ड के झुण्ड हबशी कतार बाँध कर खड़े किये जाते और कोड़ों की मार से उनकी पीठ से रक्त के स्रोत प्रवाहित होने लगते। जब एक स्वामी अपने गुलाम को अन्यत्र बेचता तो उसे काम छिलाये बिना बाल-बच्चों और स्त्री का त्याग कर चले जाने के लिए बाध्य होना पड़ता था। उनकी दशा पशुओं से भी गयी-गुजरी थी। न खाने का कोई प्रबन्ध था, न रहने-सहने का।

वाशिंगटन का जन्म इसी हबशी जाति में और इसी परिस्थिति में हुआ था। इनका बालजीवन अत्यन्त सङ्कट-सङ्कुल रहा है। उन्हें अपने पिता का नाम भी ज्ञात नहीं हुआ। वाशिंगटन ने एक जगह स्वयं लिखा है कि-"मुझे बचपन में नहीं मालुम हुआ कि खेल-कूद किस चिड़िया का नाम है? मैंने जब से होश सँभाला है तब से अब तक काम करते बीता है।" इन्हें बचपन में झाड़ू देने पानी भर कर खेत में पहुँचाने और घोड़े पर अनाज लाद कर जगल के रास्ते तीन मील अकेले चक्की पर पिसवाने का काम करना पड़ता था। विषम होने से अनाज के थैले खिसक कर जब ज़मीन पर आ रहते तो वाशिंगटन वहीं बैठे बैठे रोते-कलपते किन्तु यह यथार्थ अरण्यरोदन ही होता था। ऐसी दुर्घटनाओं से घर पहुँचने में ज़रा अबेर हो जाती तो झिड़कियों का पुरस्कार पाते। भरपेट खाना उन्हें कभी नसीब नहीं होता था। पहनने को ऐसे वस्त्र मिलते, जिन्हें पहनने से इतना कष्ट होता जितना नागफनी के काँटे बदन में चुभने से होता

है। इस भाँति दैन्यावस्था में उनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ।

इधर हबशियों की दयास्पद दुर्दशा देख कुछ उदारहृदय महानुभावों के मन में गुलामी प्रथा के अन्त कर देने की भावना जाग्रत हुई। कुछ दिनों के निरन्तर प्रयास से वह नेस्त-नाबूद हुई और वाशिंगटन भी स्वाधीन हुए। स्वाधीन होने पर इनकी माता आदि ने माल्डन के समीप नमक की खानों में काम करना आरम्भ किया। वाशिंगटन अब तक बालक थे तथापि उन्हें वसकर काम करना पड़ता था। इनके द्वितीय पिता, पीपों में जो नमक भरते थे उन पर १८ का अंक डाला जाता था। पढ़ाई के नाम वाशिंगटन ने सर्व प्रथम यही अंक सीखा था। इन्हें पढ़ने-लिखने का बड़ा चाव था, पर संयोग न मिलता था। एक बार इनके आग्रह से इनकी माता ने एक 'स्पेलिंग बुक' खरीद दी। माता यद्यपि निरक्षर थी पर कुशल और महत्वाकांक्षा वाली। लेकिन पुस्तक के उपयोग करने का कोई साधन न था। आसपास के काले मजदूरों के लिए काला अक्षर भैंस बराबर था, गोरे अपने पास भी न फटकने देते थे। संयोग से वहाँ एक हबशी आया। वह पठित तो क्या, अन्धों में काना राजा था। एक पाठशाला भी खुली परन्तु वाशिंगटन का अदृष्ट उनके अनुकूल न था। उसके द्वितीय पिता ने आर्थिक लालच के कारण उसे पढ़ने न दिया। वह पढ़ने के लिए छटपटाता पर विवश था। निदान वाशिंगटन मन मार कर मा की दी हुई स्पेलिंग बुक पर कस कर परिश्रम करने लगा। फिर वह दिन भर मजूरी करके रात्रि में अध्यापक के पास पढ़ने लगा। इसी समय वाशिंगटन को सर्व प्रथम एक टोपी पहनने को मिली, जो खुरदरे कपड़े के दो टुकड़ों को सांध कर तैयार

की गई थी। ऐसी २ अनेक प्रतिकूलताओं को प्रतिदिन में विजयी होता हुआ वाशिंगटन यथाशक्ति विद्या यत्न करने लगा।

एक बार कोयले की खान में काम करते समय वाशिंगटन ने सुना कि कहीं एक विद्यालय खुलने वाला है, जिसमें चतुर विद्यार्थी मिहनत-मजूरी करके उदर-निर्वाह भी कर सकते हैं। उस विद्यालय का नाम " हेम्पटन नार्मल एण्ड एग्रिकलचर इन्स्टिट्यूट " था। वाशिंगटन दिन रात इसी के स्वप्न देखने लगे परन्तु कोई चारा न था। विवश हो कुछ दिन बाद मरमांड में पन्द्रह रुपया मासिक वेतन पर नौकरी करने लगे। इनकी स्वामिनी बड़ी दयावती थी- उन्होंने एक घण्टा पढ़ने की आज्ञा दे दी। कुछ दिन तक ये वहीं नौकरी करते और पढ़ते रहे, लेकिन हेम्पटन जाने की धुन बराबर सवार रही। लगभग डेढ़ वर्ष तक वहाँ रहते-रहते जब कुछ राह-खर्च जमा हो गया तो हेम्पटन के लिए प्रस्थित हुए। लेकिन खर्च रास्ते में ही समाप्त हो गया। कभी रात-दिन भूखे रहे, सोने को जगह न मिलने के कारण टहलते-टहलते रात काटी, कभी पैदल चलकर रास्ता तय करने लगे। जब रिचमंड पहुँचे तो कितने ही दिन से अन्न से भेंट हुई थी। भूख के मारे छटपटा रहे थे, शरीर पर पूरे वस्त्र न थे, थकावट मिटाने के लिए कोई ठौर- ठिकाना न था। ऐसी दशा में आगे बढ़ना असंभव हो गया, अतएव ये वहीं जहाज से माल उतारने का काम करने लगे। बड़ी कठिनाई से थोड़े दाम जमा कर पाये कि हेम्पटन पहुँचे। इनके मैले- कुचैले कपड़े देख पहले तो प्रधानाध्यापिका ने कोई उत्तर न दिया फिर कुछ समझ बूझकर एक कमरे में भाड़ू लगाने की आज्ञा दी। ये ह

दबोचा। उनके ऊपर गुरुतर उत्तरदायित्व का भार आपड़ा और वे उसे निभाने के लिए उद्यत हुए। वाशिंगटन प्रातःकाल आठ बजे से रात्रि के दस बजे तक अथक परिश्रम करते थे। रात्रि-पाठशाला और रविवार-पाठशाला भी आपने स्थापित की थी, जिससे निर्धन नीग्रो मजूरों के लड़के सरस्वती देवी की उपासना से वञ्चित न रहने पावें। रात्रिदिवा कड़ी मिहनत करने के बदले निर्वाह योग्य अल्प वेतन से ही वे सन्तुष्ट रहते थे। इतना होते हुए भी उनकी ज्ञानलिप्सा अब तक शान्त नहीं हुई थी। अतः "वाशिंगटन-महाविद्यालय" में अध्ययनार्थ चले गये और दो वर्ष अध्ययन करने के पश्चात् माल्डन आकर फिर अध्यापकी करने लगे। कुछ समय हेम्पटन विद्यालय में भी अध्यापक रहे और साथ ही अध्ययन भी करते रहे।

हवशियों के ध्यान में शिक्षा का मूल्य आ गया था और वे उसके लिए अत्यन्त उत्सुक थे। इसी उत्सुकता के परिणाम में टस्केजी स्थान में एक पाठशाला स्थापित करने का विचार हुआ। उसका सारा भार वाशिंगटन के समर्थ स्कन्धों पर पड़ा। उन्होंने टस्केजी जाकर वहाँ का रंग-ढंग देखा तो क्षणिक निराशा हुई किन्तु कर्मशूर मनुष्य कर्म करना जानते हैं, उसमें आने वाली कठिनाइयों की कल्पना करके उसे छोड़ नहीं बैठते। लम्बी दौड़-धूप के बाद एक टूटा फूटा झोंपड़ा मिल गया और उसी में पाठशाला प्रारम्भ हुई। जब वर्षा होती तो पानी का बचाव न हो सकने से वाशिंगटन छाता लगा कर पढ़ाते। भोजन करते समय वृष्टि होती तो उनकी स्त्री छाता लगाती तब कहीं पेट भर पाते। यद्यपि वे सुन्दर हवेली में रह सकते थे परन्तु छात्रों को संकट में रखकर स्वयं आनन्द-

पूर्वक रहने का विचार भी उन्हें नीचतापूर्ण ज्ञान पड़ता था
योग्य छात्रों को विद्यालय में प्रविष्ट करने के लिए भाँति-
भाँति के कष्ट उठा कर देहात में घूमते फिरे। वे परिश्रम
या तकलीफों से कभी घबराते न थे वरन् उनमें आनन्द का
अनुभव करते थे। जिस समाज में शिक्षा प्रचार करने के
लिए वाशिंगटन दत्तचित्त हो रहे थे वह बिलकुल जंगली
समाज था। एक बार वाशिंगटन ने एक व्यक्ति से उसका
पूर्वकालिक जीवन वृत्तान्त पूछा। उसने उत्तर दिया—हम पाँच
जने एक साथ बिके थे—मैं मेरा भाई और तीन खच्चर। अन्त में
वाशिंगटन के अचला के समान अचल निश्चय, कुबेरराज
के समान प्रबल पौरुष और सज्जन के समान सर्वसह स्वभाव
ने विद्यालय को इतना उन्नत बना दिया कि सन् १९१२ में,
उसमें १०६ भवन, २३५० एकड़ जमीन, १५०० चौपाये तथा
कृषि के औज़ार हो गये। विद्यालय की समस्त निश्चित
चौंतीस करोड़, सोलह लाख, छियासी हज़ार, एक सौ छह
डालर तक पहुँच गयी। १८० से अधिक अध्यापक आदि कार्य-
कर्ता तथा १०१८ बालक-बालिकाएँ अध्ययन करने लगे। कहाँ
टूटा-फूटा झोंपड़ा, कहाँ १०६ भवन, कहाँ पैसे-पैसे को मुहताज
होना और कहाँ लगभग एक अरब रुपयों की सम्पत्ति! धन्य
वाशिंगटन तेरी कर्मण्यता को। विद्यालय की इतनी उन्नति और
ख्याति सुनकर अमेरिका के तात्कालिक प्रेसीडेंट तक उसे
देखने आये और प्रसन्नता प्रकट की।

वाशिंगटन की ऐसी योग्यता और सेवापरायणता देख
केम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने आपको एम. ए. की आनरेरी उपाधि
देकर अपने को गौरवान्वित बनाया था। नीग्रो जाति में यही

पहले व्यक्ति थे जिन्हें ऐसा सम्मान प्राप्त हुआ।

वे अपने कार्य अथवा प्रबन्ध को निश्छिद्र मान कर संतुष्ट नहीं हो जाते थे, वरन् छात्रों में घुल-मिल कर बातों ही बातों में दोष ढूंढ निकालते और दूर कर देते थे। संस्थासंचालकों के लिए वाशिंगटन की यह पद्धति सर्वथा अनुकरणीय है। प्रस्तुत विद्यालय के अभ्युदय का यही मन्त्र था।

वाशिंगटन ने इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी आदि प्रायः समस्त यूरपीय देशों में प्रवास किया और वहां के लोगों ने दिल खोल कर आपका स्वागत किया। उन्होंने अपनी नीग्रो जाति को नरक से निकाल कर स्वर्ग में पहुंचा दिया। टस्केजी महाविद्यालय, नीग्रो कृषक महासभा, नीग्रो राष्ट्रीय महासभा आदि संस्थाओं द्वारा अपनी जाति का मुख उज्ज्वल किया।

वस्तुतः वाशिंगटन जैसे पुरुषरत्नों का जीवन धन्य है, जो स्वयं सहस्रों कष्ट झेलते हुए अपने देश और अपनी जाति के सुन्दरतम भविष्य-निर्माण की कल्पना करके तदनुरूप प्रवृत्ति के अनिर्वचनीय माधुर्य में मग्न रहते हैं और उसी मस्ती को जीवन का ध्येय या लक्ष्यबिन्दु बनाकर उसी के लिए अपना जीवनोत्सर्ग कर देते हैं।

आपत्ति के समय सहज ही अभीष्ट फ़ल प्राप्त हो जाते हैं। धैर्य की परीक्षा आपत्ति काल में होती है। जो धीर-वीर ऐसे विकट समय में धैर्य को हाथ से नहीं जाने देते उन्हें सुख-भोग अवश्य प्राप्त हो जाते हैं, और उसके बिना सुखी मनुष्य भी दुःख के गंभीर गर्त में गिर पड़ते हैं। धैर्य ही हमारा सच्चा मित्र है क्योंकि विपत्ति का वही उद्धारक है। जिसका साथी धैर्य है, उसे किसी दूसरे को साथी बनाने के लिए नहीं भटकना पड़ता।

विपत्तियों के क्रूर प्रहार धैर्य को उत्पन्न करते हैं परन्तु सत्यता, कर्मशीलता, आज्ञा-पालन, प्रणपरायणता और ईश्वर-निष्ठा ऐसे सात्त्विक गुणों से उसमें पूर्णता आती है। जिसमें स्वभावतः इन गुणों का वास होता है, वह बड़े-बड़े दैवी-प्रकोप भी हँसते-हँसते सहन कर लेता है। जो व्यक्ति विपत्ति के एक ही थपेड़े से तिलमिला कर कातर हो जाता है, उसे जीवन-संग्राम में कदापि विजय लाभ नहीं हो सकता। जो विजिगीषु धीरता का विजयास्त्र लेकर, निर्भयता, साहस एवं सदाचार रूपी सामन्तों के साथ बराबर आगे बढ़ता चला जाता है, विपत्तियाँ उसका बाल बांका नहीं कर सकतीं, उसके लिए भीषण रणभूमि भी रंगभूमि बन जाती है।

धैर्य का अनुग्रह-भाजन वही हृदय हो सकता है जिसे सच्चरित्रता ने पवित्र कर दिया हो। संसार की सुख-सामग्री वास्तव में सदाचारी के लिए है। वही उसका उपार्जन, संरक्षण और सदुपयोग कर सकता है। धैर्य को धारण करने के लिए एक प्रकार के आत्मबल की आवश्यकता होती है और वह आत्मबल सदाचारी को ही प्राप्त होता है।

धैर्य को उचित मात्रा में प्राप्त करने और योग्य अवसर

पर उसका उपयोग करने के लिए प्रतिभा-शक्ति की आवश्य
है । मनबोध और मियांमिट्ठू में बड़ी घनिष्ठता थी-दे
की गाढ़ मैत्री थी । एक दिन दोनों मित्र वन्य मार्ग से दूस
गाँव जा रहे थे कि रीछ की गुर्राहट सुनाई दी । मियांमिट्
अपने मित्र को छोड़ पेड़ पर चढ़ गया । मनबोध पेड़ पर चढ़ना
न जानता था । वह थोड़ी देर तक मित्र की ओर ताकता रहा
कि वह कुछ सहायता करेगा, परन्तु जब उसने तोते की तरह
आँखें बदल ली तो मनबोध ने धोखेबाज़ मित्र से निराश हो
सच्चे मित्र धैर्य और प्रतिभा का आश्रय लिया और श्वास रोक
कर मुर्दे की नाईं पृथ्वी की गोद में लेट रहा । रीछ आया और
मनबोध को मुर्दा समझ लौट गया । मनबोध मरते-मरते
बच गया ।

भले ही यह कहानी कल्पनाप्रसूत हो पर इससे मिलने वाली
शिक्षा वास्तविक और अमूल्य है । यदि मनबोध के पास उस
समय धैर्य नामक अस्त्र न होता तो निस्सन्देह वह उस घातक
पशु का शिकार हो गया होता । साथ ही सांस रोक कर मुर्दों
की तरह पड़ रहने की अनोखी सूझ या कल्पनाशक्ति न होती तो
भी उसकी प्राणरक्षा संभव न थी । यह स्मरण रखना चाहिए
कि यदि धैर्य विद्यमान हो तो प्रतिभा स्वयं प्रस्फुटित हो जाती
है, घबराहट के समय प्रतिभा का प्रस्फोट नहीं होता ।

बिना आत्मविश्वास की दृढ़ता के हमारी उन्नति की आशा
नहीं की जा सकती । दृढ़प्रतिज्ञ और कर्मवीर पुरुष भी आत्म-
विश्वास के बिना अपने साध्यपथ को सुगम नहीं बना सकते ।
अक्षुण्ण गम्भीरता तथा उच्चतम धैर्य के सहयोग से ही
साध्यशिखर को समुन्नत और सौम्य

आपत्ति के समय सहज ही अभीष्ट फल प्राप्त हो जाते हैं। धैर्य की परीक्षा आपत्ति काल में होती है। जो धीर-वीर ऐसे विकट समय में धैर्य को हाथ से नहीं जाने देते उन्हें सुख-भोग अवश्य प्राप्त हो जाते हैं, और उसके बिना सुखी मनुष्य भी दुःख के गंभीर गर्त में गिर पड़ते हैं। धैर्य ही हमारा सच्चा मित्र है क्योंकि विपत्ति का यही उद्धारक है। जिसका साथी धैर्य है, उसे किसी दूसरे को साथी बनाने के लिए नहीं भटकना पड़ता।

विपत्तियों के क्रूर प्रहार धैर्य को उत्पन्न करते हैं परन्तु सभ्यता, कर्मशीलता, आज्ञा-पालन, प्रणपरायणता और ईश्वर-निष्ठा ऐसे सात्विक गुणों से उसमें पूर्णता आती है। जिसमें स्वभावतः इन गुणों का वास होता है, वह बड़े-बड़े दैवी-प्रकोप भी हँसते हँसते सहन कर लेता है। जो व्यक्ति विपत्ति के एक ही थपेड़े से तिलमिला कर कातर हो जाता है, उसे जीवन-संग्राम में कदापि विजय लाभ नहीं हो सकता। जो विजिगीषु धीरता का विजयास्त्र लेकर, निर्भयता, साहस एवं सदाचार रूपी साधनों के साथ बराबर आगे बढ़ता चला जाता है, विपत्तियाँ उसका बाल बांका नहीं कर सकतीं, उसके लिए भीषण रणभूमि भी रंगभूमि बन जाती है।

धैर्य का अनुग्रह-भाजन वही हृदय हो सकता है जिसे सच्चरित्रता ने पवित्र कर दिया हो। संसार की सुख-सामग्री वास्तव में सदाचारी के लिए है। वही उसका उपार्जन, संरक्षण और सदुपयोग कर सकता है। धैर्य को धारण करने के लिए एक प्रकार के आत्मबल की आवश्यकता होती है और वह आत्मबल सदाचारी को ही प्राप्त होता है।

धैर्य को उचित मात्रा में प्राप्त करने और योग्य अवसर

पर उसका उपयोग करने के लिए प्रतिभा-शक्ति की आवश्यकता है। मनबोध और मियांमिट्ठू में बड़ी घनिष्ठता थी-दोनों की गाढ़ मैत्री थी। एक दिन दोनों मित्र वन्य मार्ग से दूसरे गाँव जा रहे थे कि रीछ की गुर्राहट सुनाई दी। मियांमिट्ठू अपने मित्र को छोड़ पेड़ पर चढ़ गया। मनबोध पेड़ पर चढ़ना न जानता था। वह थोड़ी देर तक मित्र की ओर ताकता रहा कि वह कुछ सहायता करेगा, परन्तु जब उसने तोते की तरह आँखें बदल लीं तो मनबोध ने धोखेबाज़ मित्र से निराश हो सच्चे मित्र धैर्य और प्रतिभा का आश्रय लिया और श्वास रोक कर मुर्दे की नाईं पृथ्वी की गोद में लेट रहा। रीछ आया और मनबोध को मुर्दा समझ लौट गया। मनबोध मरते-मरते बच गया।

भले ही यह कहानी कल्पनाप्रसूत हो पर इससे मिलने वाली शिक्षा वास्तविक और अमूल्य है। यदि मनबोध के पास उस समय धैर्य नामक अस्त्र न होता तो निस्सन्देह वह उस घातक पशु का शिकार हो गया होता। साथ ही सांस रोक कर मुर्दे की तरह पड़ रहने की अनोखी सूझ या कल्पनाशक्ति न होती तो भी उसकी प्राणरक्षा संभव न थी। यह स्मरण रखना चाहिए कि यदि धैर्य विद्यमान हो तो प्रतिभा स्वयं प्रस्फुटित हो जाती है, घबराहट के समय प्रतिभा का प्रस्फोट नहीं होता।

बिना आत्मविश्वास की दृढ़ता के हमारी उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। दृढ़प्रतिज्ञ और कर्मवीर पुरुष भी आत्म-विश्वास के बिना अपने साध्यपथ को सुगम नहीं बना सकते। [illegible]न गम्भीरता तथा उच्चतम धैर्य के सहयोग से ही हम साध्यशिखर को सकुशल और शीघ्र प्राप्त कर सकते हैं। दुर्वा-

सनाओं के पीछे पड़ना आत्मविश्वास नहीं कहलाता वरन् दृढ़ता विशिष्ट अन्तःकरण में व्याप्त एक अलौकिक शक्ति को आत्म विश्वास कहते हैं। सत्कार्य करने में दृढ़तर मानसिक अनुराग रूप आत्मविश्वास धैर्य की भित्ति है। निरन्तर कर्मशीलों को दुर्वासनाएं नहीं सता सकती, उनका अड्डा निठल्ला जीवन है अतएव यदि आपको वासनाविहीन और सफल जीवन बिताना है तो निरन्तर कार्यरत रहिए, धैर्य रखिए, आपका अभीष्ट आप ही सिद्ध हो जायगा। आपकी महत्वाकांक्षा भी समय पाकर अपने उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच जायगी।

ज्यों ही आपको दुर्वासनाएं सताएं त्यों ही सत्कार्य में लग जाइए। ऐसा न करेंगे तो दुर्वासनाएँ आपके जीवन को निकम्मा करके अन्त में नष्ट कर डालेंगी। अनादि काल से संसार-वारिधि के विविध विकराल विपत्ति-आवर्तों में चक्कर खाते-खाते बड़ी कठिनाई से प्राप्त मनुष्य जीवन रूपी चिन्तामणि को फिर दुर्वासनासागर में फैंक देना क्या बुद्धिमत्ता है? यदि यह मूर्खता है— और सचमुच ऐसा ही है— तो आप मूर्खता के मार्ग में गमन न कीजिए। धैर्य के साथ जीवन के साध्य की ओर बढ़ते जाइए, निश्चय आपकी विजय होगी।

पाठ सातवाँ

महाराणा प्रताप और भामाशाह.

को स्वतन्त्रता के लिये जो अगणित कष्ट सहे हैं, उन्हें सुनकर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। इतिहास-विख्यात यवन-सम्राट् अकबर, महाराणा का प्रतिद्वन्द्वी था। वह समग्र भारतवर्ष पर एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित करने के लिए अतिशय व्यग्र और उन्मत्त हो रहा था। प्रताप उसके इस उन्माद की चिकित्सा कर रहे थे।

अनेकों बार यवन-सैन्य महाराणा प्रताप के प्रबल प्रताप में भस्म हो चुका था, परन्तु अकबर के पास प्रभूत सैन्य था। इधर, महाराणा के समर-साधन न्यून होते गये, धन-जन का विनाश हो गया, सहस्रों शूरवीर महाप्रयाण कर गये, चहुँ ओर शत्रु घिर आये, बाल-बच्चों के रक्षण की चिन्ता सवार हो गई, भर पेट भोजन दुर्लभ हो गया। यद्यपि महाराणा धीरवीर और मूर्तिमान साहस थे, तथापि उन्हें मेवाड़ के उद्धार की आशा न रही। इस दशा में भी वे अपने इस प्रण पर निश्चल रहे कि प्राण त्याग देंगे पर स्वाधीनता त्याग कर यवनों की अधीनता स्वीकार न करेंगे। अन्त में सब तरह से निराश हो कर प्रताप ने सिन्धु नदी के समीप जा रहने का विचार किया। उन्होंने अपने अमूल्य अश्रुनीर से मेवाड़ को अञ्जलि प्रदान की और चलने को उद्यत हुए।

महाराणा प्रताप के अतिशय विश्वासभूमि प्रधानमन्त्री भामाशाह को उनका यह विचार विदित हुआ। उनके पूर्वज कितनी ही पीढ़ियों से इस पद की प्रतिष्ठा बढ़ा चुके थे। उन्होंने महाराणा से कहा—"महाराज! मुझे छोड़कर आप कहाँ जाते हैं? मैं भी आपके साथ चलूंगा। अपनी पत्नी से विदा मांग आया हूँ।" भामाशाह ने घर जाकर अपने

स्त्री और पुत्र को बुलाकर कहा—"जिस राज्य के
से हम लोगों ने लाखों करोड़ों की सम्पत्ति पाई है उसी
के प्राण प्रणपरायण महाराणा प्रतापसिंह धनाभाव के
आज मेवाड़ को मुसलमानों के हाथ में छोड़कर जाना
है। हमारी सम्पत्ति के सर्वश्रेष्ठ सद्व्यय का यही समय
देश सुरक्षित रहा तो धन-सम्पत्ति फिर हो जायेगी।"
कह कर उदारहृदय भामाशाह ने स्त्री और पुत्र को एक
वस्त्र पहनाया और शेष समस्त सम्पत्ति महाराणा के च
में अर्पण करदी। उस सम्पत्ति से २५ हजार सेना का
वर्ष तक का खर्च बखूबी चल सकता था।

महाराणा, भामाशाह की यह अपूर्व देशभक्ति अ
उदारता देख गद्‌गद् हो गये। बोले-मन्त्रीश्वर! आपके पूर्वज
और आपने जो सम्पत्ति उपार्जन की है, उस पर मेरा अ
भी अधिकार नहीं, तथापि मेवाड़ के उद्धार के लिए मैं उ
स्वीकार करता हूँ और इस प्रशंसनीय त्याग के लिए आपक
कोटिशः धन्यवाद देता हूँ। भामाशाह! यदि आपके ध
से मेवाड़ का उद्धार होगा तो सारा यश आपको ही मिलेगा
आपका नाम इतिहास में सुवर्णवर्णों में अङ्कित रहेगा। इस
उदारता ने मुझमें नवीन चैतन्य उड़ेल दिया है, अब मैं पुनः
मेवाड़ के उद्धार के लिए प्राणप्रण से प्रयत्न करूंगा। भामा-
शाह ने अपनी प्रशंसा से कुछ सकुचाते हुए कहा—"महाराणा,
मैंने कर्त्तव्य से अधिक कुछ नहीं किया है। जिस जननी
जन्मभूमि ने जन्म देकर मेरा भरणपोषण किया, उसके
कल्याण के लिए सर्वस्व समर्पण करके भी कोई कृतज्ञ पुत्र
अपने को उऋण नहीं समझ सकता।"

भामाशाह! धन्य है तुम्हारा देशप्रेम! धन्य है तुम्हारा औदार्य! धन्य है तुम्हारा कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेक! तुमने जैन जाति की, मेवाड़ की, और महाराणा की लाज रखली!

धन पाते ही प्रतापसिंह ने सेना एकत्र करना आरम्भ कर दिया और अवसर देखकर मुगल दल पर टूट पड़े। दुर्दान्त राजपूतों ने अपनी उमड़ लहरों में यवनों को तिनके की तरह बहा दिया। मुसलमानों की सेना अत्यधिक थी, तथापि राजपूतों की दृढ़ता और देशोद्धार की कामना फलवती हुई। दो-तीन स्थानों के सिवाय समस्त मेवाड़ पर पुनः प्रताप की विजय-वैजयन्ती विलसित हो उठी।

वीरवर भामाशाह भी युद्ध में सम्मिलित हुए थे। उन्हें शूरता और शूरवीरोचित दयालुता-दोनों ने अपना आश्रय बनाया था। नयी सेना की पहली मुठभेड़ यवन-सेना नायक शाहबाजखाँ से हुई थी। वह भामाशाह के सामने आया। दोनों की तलवारें कृतान्त की विकराल जिह्वा के समान एक दूसरे के रक्तपान के लिए लपलपाने लगी। अन्त में वृद्ध भामाशाह ने शाहबाजखाँ की भुजा में एक ऐसा हाथ मारा कि उसकी तलवार झनझनाती हुई मानो लज्जित होकर जमीन पर जा रही। वह निश्शस्त्र होगया। भामाशाह चाहते तो इस सुयोग से लाभ उठाकर उसका काम तमाम कर सकते थे, पर वे बोले—खाँ साहब! तुम हमारे प्रतिद्वन्द्वी हो, इस लिए तुम्हें खुदा ताला की हाज़िरी में भेजने का अवसर हाथ से न जाने देना चाहिए, तथापि निश्शस्त्र पर वार करना वीरों का कर्त्तव्य नहीं है, अतएव छोड़ देता हूँ। तल-वार हाथ में पकड़ो या गुपचाप यहाँ से खिसक कर अपनी

जान बचाओ। गीदड़ दुम दबाकर भागा, शेर ने उसका प
ा किया।

वास्तव में भामाशाह भा-मा-शाह थे। मेवाड़-माता
पनी भावी विपत्ति का अनुमान करके अपने उद्धार
लिए ही शायद इन्हें जना था। उन्होंने उसका संकल्प पू
किया। उनके वंशजों को मेवाड़ में अब तक बहुत प्रतिष्ठ
है। इतिहास में भामाशाह मेवाड़ के उद्धारक के नाम से
प्रसिद्ध हैं। उन्हींके अनुपम त्याग से मेवाड़ का गौरव अक्षुण्ण
रहा था। जैनजाति को इस सपूत पर बच्चे-बच्चे को दर्प है।

पाठ आठवाँ

नैपोलियन बोनापार्ट

मंगल– कल्याण, हित। प्रलय मचाना– उथल पुथल करना। कुण्ठित–
संकुचित। इंजीनियरिंग– कल बनाने की विद्या। प्रजातंत्र– प्रजा द्वारा की जाने
वाली शासन-व्यवस्था, गणतंत्र। अभियोग– मुकदमा। आततायी– अत्याचारी।
अनन्यभाव– सहयोग, एकता।

आत्मा में अनन्त शक्ति है, परन्तु सर्वसाधारण जन, यह
बात जानने ही न पावें यदि समय समय पर कुछ महापुरुष आत्म-
शक्ति का विकसित रूप, उनके सामने न रक्खें। नैपोलियन भी
उन्हीं विशिष्ट पुरुषों में से एक था। शत्रु उसकी चाहे जितनी नि

करें पर इसमें सन्देह नहीं, कि नैपोलियन के जीवन का मु मन्त्र, फ्रान्स देश की महान सेवा और फरासीसियों का मंगल साधन था। उसकी वह शुभ भावनाएं, अन्य राष्ट्रों या मानवी संसार की अहितसाधना का, किञ्चित भी आधार नहीं रखत थीं। नैपोलियन, एक ऐसा शक्तिसम्पन्न पुरुष था, जिसे उत्तेजित जनता और गर्वीले शत्रुओं को वश कर लेने का अद्भु कौशल था। वह पतितों का पूजक और पीड़ितों का आश्रय था उसके कोमल हृदय में, दुखियों की वेदना प्रलय मचाये रहत थी, और इसीलिये अपने देश फ्रांस के चरणों में, अपनी प्रिय तमा फरासीसी जाति की सेवा में, अपने तन मन और सर्वस् को आहुति देने में, वह तनिक भी कुण्ठित नहीं हुआ।

उसने जिस आदर्श का अनुसरण करके, मृत्यु का आलिङ्ग किया, वह आदर्श, विश्व के लिये हितकर है या अहितकर यह बतलाने की तो अब आवश्यकता नहीं रही; परन्तु उसने आत्मविश्वास के भरोसे फरासीसी जाति के कष्ट निवारणार्थ जैसी कठोर साधना साधी थी, वह फरासीसियों के हृदयों पर सम्पूर्ण अधिकार करने के लिये पर्याप्त थी। उन दिनों फरासीसी उसे मित्र का सम्पूर्ण प्यार और पथप्रदर्शक की सारी भक्ति अर्पित करते थे। परम्परागत राजाओं की रक्त पिपासा, हृदय हीनता और स्वार्थ-साधनाओं के विरुद्ध, यदि यूरोप में किसी ने सफल विद्रोह उठाया, तो वह था वीरवर नैपोलियन।

भूमध्य सागर के कार्सिका द्वीपान्तर्गत अजेशियो नगर आज से १६० वर्ष पहिले, उसका जन्म हुआ था। उसके पि का नाम चार्ल्स बोना पार्ट था, जो एक देशभक्त वकील थे और माता का नाम लिटिशिया था, जो एक विदुषी वीराङ्गना थं

नैपोलियन बाल्यावस्था से ही होनहार दिखता था। उसका मन खेल-कूद में प्रायः नहीं लगता था। जब उसके भाई बहिन खेलते या कोलाहल मचाते थे, तब वह, या तो लहराते हुये भूमध्य सागर को, या उसमें आने जाने वाले जहाजों को देखा करता, या निकट ही की गुफा में बैठकर, कुछ सोचा करता था। उस नकली लड़ाई के खेल, घोड़े की सवारी और वीरता भरे मन बहलाव लड़कपन से ही रुचते थे।

जब नैपोलियन ५ वर्ष का भी न हुआ था तब चार्ल्स बोनापार्ट का देहान्त होगया। घर गृहस्थी का सारा भार देवी लिटिसिया पर आ पड़ा। उस बुद्धिमती महिला ने १० वर्ष की आयु तक नैपोलियन को अजॉक्सियो की पाठशाला में पढ़ाकर पेरिस भेजा। पेरिस की जिस पाठशाला में वह भरती हुआ, उसमें प्रायः धनियों के ही लड़के पढ़ते थे। वे उसके सादे पहनावे और गरीबी ढंग की हँसी उड़ाते और नैपोलियन उसे चुपचाप सुन लिया करता था।

नैपोलियन को गणित और इंजीनियरिंग के विषय सर्वाधिक प्रिय थे। इतिहास, राजनीति और विज्ञान भी वह चाव से पढ़ता था अवकाश के समय में साहित्य भी देखता था। एक बार उसने अपनी माँ को पत्र में लिखा था " पूजनीय माँ! एक हाथ में तलवार और दूसरे में होमर (होमर काव्य) लेकर तुम्हारा नैपोलियन, संसार में अपने लिये कहीं भी मार्ग बना सकता है। "

पढ़ने में ऐसी लगन थी कि एक बार एक कठिन प्रश्न को हल करने के लिये वह लगातार तीन दिन तक लगा रहा और जब उसे हल कर चुका तब घर के बाहर निकला। अध्यापक

गण उस पर सदा सन्तुष्ट रहे और उसे भावी महापुरुष मानते रहे।

पाठशाला की छुट्टियों में नेपोलियन कार्सिका जाता और किसानों से मिल कर उनकी आप बीती बड़े चाव से सुनता था। किसानों की करुण कथा, मानों उसके हृदय का स्पर्श कर कहती थी कि हे नेपोलियन, हमें इन अत्याचारों से बचाओ। इन प्राणाधिकार जोंकों से हमारे रक्त और प्राण की रक्षा करो।

उन्हीं दिनों एक बार पेरिस में बड़ी कड़ी शीत पड़ी और खूब बर्फ बरसी। नेपोलियन को एक खेल सूझा। उसने बर्फ का एक किला बनाया। अपने सहपाठियों को दो दलों में विभक्त करके, एक को दुर्ग का रक्षक और दूसरे को उसका विध्वंसक नियत किया। आप दोनों दलों का सेनापति बना। नकली लड़ाई प्रारंभ हुई। एक सैनिक वेषधारी सहपाठी ने, नेपोलियन के आदेश की अवहेलना की, परिणाम स्वरूप नेपोलियन ने एक बर्फ का गोला उसके माथे में दे मारा, जिससे माथा फूट गया और रक्त की धारा बह चली। यह नकली लड़ाई ८ दिन तक चलती रही। कालान्तर में जब नेपोलियन फ्रांस का भाग्य-विधाता बना तब यह विद्यार्थी उससे मिला। माथे पर चोट का चिह्न देखकर नेपोलियन ने इसे पहिचान लिया और प्रेम पूर्वक अपनी सेना में सेनानायक बनाया। इसी प्रकार अपने अधिकारकाल में एक अध्यापक महाशय की भी सामानीन सहायता करके उसने अपने कृतज्ञ हृदय का परिचय दिया।

१६ वर्ष की अवस्था में नेपोलियन लेफ्टिनेंट बनाया गया। इसके पहिले दो बार, वह आट मार्ट विद्रोह का दमन करने भेजा गया था, जहां सफल हुआ था।

इसी समय फ्रांस में राज्यविप्लव का सूत्रपात हुआ। प्रजा-

चारी राजा और उसके उत्पीड़क साथियों के विरुद्ध, निर्धन कृषक और श्रमिक वर्ग ने शस्त्र उठाये । नेपोलियन उनका सेनापति बना । नेपोलियन ने कार्सिका जाकर अपने चिर परिचित कृषक मित्रों में प्रजातन्त्रात्मक भावनाएं भरीं, जिनके कारण पेरिस में उस पर राजविद्रोह का अभियोग चलाया गया, जिसमें वह निर्दोष कह कर छोड़ दिया गया । प्रतिहिंसा से पागल बनी हुई प्रजा ने ३० हजार राज्याधिकारियों तथा उनके अत्याचारी साथियों को गिलोटिन (फांसी) पर लटका राजा-रानी को भी जीता न छोड़ा । नेपोलियन क्रान्तिकारियों की इस उच्छृंखल नरहत्या से बड़ा निराश हुवे पर इसी समय एक ऐसी घटना घटित हुई, जिसने नेपोलियन और क्रान्तिकारियों में सम्बन्ध स्थापित कर दिया । वह घटना यों थी कि 'पायोली' ने, जो नेपोलियन का एक स्वतन्त्रतावादी मित्र था, कार्सिका पर अधिकार करने के लिये अंग्रेजों को बुलवाया । नेपोलियन इसकी इस नीचता पर क्रुद्ध हुआ । कार्सिका से अंग्रेजों को भगाने का नेपोलियन ने प्रयत्न किया पर असफल हुआ । अंग्रेजों के दो वर्ष के शासन-काल में कार्सिकावासी त्राहि त्राहि कर उठे । जब फरांसीसी सेना ने कार्सिका पर घेरा डाला तब कार्सिकावासियों ने उसका साथ दिया । अंग्रेजी सेना इंगलैण्ड भाग गयी, साथ ही देशद्रोही पायोली भी इंगलैण्ड चला गया ।
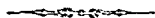
सेनापति नेलसन ने अबूकर की खाड़ी में ठहरे हुये फ्रांस के रणपोतों को नष्ट कर दिया। समाचार पाते ही नैपोलियन अबूकर की खाड़ी में आया और अंग्रेज़ों तथा तुर्कों की सम्मिलित सेना को हराकर भगा दिया। यहीं नैपोलियन को यह पता पड़ा कि फ्रांस प्रजातन्त्र मेरे मिश्र आते ही अत्यन्त निर्बल पड़गया है इस कारण उसे इङ्लेण्ड आदि हड़पने के प्रयत्न में है। मिश्रविजय के पश्चात् वह भारत आना चाहता था क्योंकि मैसूर के तत्कालीन नवाब टीपू सुलतान ने, अंग्रेज़ो के विरुद्ध भारतीय युद्ध में, उससे सहायता चाही थी, परन्तु फ्रांस प्रजातंत्र की दुर्गति सुनकर उसने भारत आने का विचार स्थगित कर दिया और यथासभव शीघ्र पेरिस पहुँचा। निर्बल प्रजातंत्र के स्थान में उसने सबल प्रतिनिधि-सत्ताक शासन प्रणाली प्रचलित कराई जिसका प्रथम राष्ट्रपति नैपोलियन स्वयं चुना गया।

डोवर की खाड़ी में अंग्रेज़ों से भयानक युद्ध हुआ, जिसमें हारकर अंग्रेज़ों ने नैपोलियन से संधि करली। इसी युद्ध के पश्चात् नैपोलियन पहिले तो १० वर्ष के लिए राष्ट्रपति चुना गया फिर वह जीवन भर को राष्ट्रपति बना दिया गया और ... में सम्राट् बनाकर सिंहासन पर बिठला दियागया। इसी ... लिम्बार्डी (इटाली का उत्तरीय प्रदेश) ने भी नैपोलियन को सम्राट् बनाकर राजमुकुट पहिनाया। दोनों देशों ... का आनन्दोत्सव हुआ।

... नैपोलियन को राजनियमानुसार किसी राजकन्या से विवाह करना चाहिये था, अतः आस्ट्रियन राजकुमारी ... से विवाह सम्पन्न हुआ।

एक बार नदी का एक कच्चा पुल पार करना था। शत्रु पुल की तोपें अविराम गोले उगल रही थीं। एक सेनानायक ने कहा इस स्थिति में पुल पार करना नितान्त असम्भव है। उत्तर में नेपोलियन दहाड़ उठा-"असम्भव फरासीसियों का शब्द नहीं कायरों का शब्द है।" फरासीसी सेना पुल के पार हो कर शत्रु को पराजित करने में समर्थ हुई।

सम्राट योद्धा और युद्धप्रिय सेनापति होते हुए भी, नेपोलियन बड़ा दयालु था। जहां तक उससे बन पड़ता मारकाट से बचकर शत्रु को बन्दी बना लेता और यथासमय क्षमा कर देता था। शत्रुपक्ष के घायलों की चिकित्सा और परिचर्या उसी सतर्कता से करवाता कि जैसी, फरासीसी घायलों की करवाता था।

एक बार एक शत्रु राजा अपने रुग्ण राजकुमार को छोड़ कर, राजभवन से भाग गया। इस समय नेपोलियन की तोपें उस नगर पर गोले फेंक रही थीं, पर जैसे ही रोगी राजकुमार के राजभवन में होने का पता नेपोलियन को मिला तुरत तोपें चलाना रोक दिया।

सम्राट नेपोलियन का राजमहल तैयार हो रहा था, पर एक कोने में एक निर्धन जन का घर पड़ता था जिसका मूल्य अधिक से अधिक १ हजार फ्रांक होता था, किन्तु वह मांगता था १० हजार फ्रांक। जब नेपोलियन के पास यह बात पहुंची तब उसने कहा उसकी मांग मुझसे है और उचित है, दे दो। जब राजकर्मचारी १० हजार फ्रांक देने लगे तब तो वह निर्धन जन २० हजार फ्रांक मांगने लगा। नेपोलियन ने यह भी स्वीकार कर लिया। तब वह ३० हजार फ्रांक

का गीत गाने लगा। नैपोलियन ने यह भी स्वीकार कि[या]
तब वह ५० हजार फ्रांक का राग अलापने लगा। नि[...]
नैपोलियन ने उतना भाग छोड़ कर महल बनाने की आ[...]
दी पर उस लालची पर कोई अत्याचार न होने दिया।

फ्रांस के एक बहुत बड़े इंजीनियर से एक बड़ा पुल तैया[र]
कराया गया था, पर वास्तव में उसे बड़े इंजीनियर की
अधीनता में एक नन्हें इंजीनियर ने बनवाया था। नैपोलियन
ने उस नन्हें इंजीनियर को बड़ा इंजीनियर बना दिया और
उसका वेतन भी पहले से बहुत अधिक बढ़ा दिया।

वह स्वयं सदाचारी था और दूसरों को भी सदाचारी
देखना चाहता था। एक बार व्यभिचार करने के अपराध
में, उसने अपने दो सैनिकों को फाँसी पर लटकवा दिया था।
स्त्री जाति का वह बड़ा सम्मान करता था। मातृभक्त भी
बड़ा कट्टर था। माता की आज्ञा के विरुद्ध कभी एक डग
न धरता था।

अंग्रेजों ने अपने आपत्तिग्रस्त अतिथि नैपोलियन की जो
अभ्यर्थना की वही उसके शीघ्र देहान्त होने का कारण बनी।
आज नैपोलियन का पार्थिव शरीर इस संसार में नहीं है,
परन्तु उसकी अमर कीर्ति जीवित है और चिरकाल तक जीवित
रहेगी। जब तक फ्रान्स राष्ट्र और मनुष्यता के पुजारी संसार
में जीवित रहेंगे, तब तक नैपोलियन का नाम आदर से
लिया जाता रहेगा। यही नहीं किन्तु अखिल विश्व उसके
आदर्श जीवन से यह सुन्दर उपदेश ग्रहण कर जीवन-संग्राम में
विजयी बनेगा—

"चलो अभीष्ट मार्ग में सहर्ष खेलते हुये,
विपत्ति विघ्न जो गिरें उन्हें ढकेलते हुये।"

शक्ति भर प्रयत्न करने पर भी उस प्रयत्न-पुरुषार्थ- का कुछ भी फल नहीं होता क्योंकि उसे काल की सहायता नहीं मिली। कोई व्यक्ति कलकत्ता से रवाना होकर नियत समय पर ही बीकानेर पहुँच सकता है। औषध सेवन से समय पर ही लाभ होता है। स्वभाव भी काल के बिना कार्यकारी नहीं होता। आम्रवृक्ष का स्वभाव हजारों आम्र फल उत्पन्न करने का है। स्वभाववादी के हाथ में आम की गुठली दीजिए, क्या वह तत्काल आम का पेड़ खड़ा कर रसाल का रसास्वादन करा सकता है? कदापि नहीं। बात यह है कि काल की सहायता के बिना कार्य नहीं उत्पन्न हो सकता। ग्रीष्म ऋतु में ही सूर्य तपता है, शीत काल में ही शीत पड़ता है। युवावस्था में ही मनुष्य के दाढ़ी-मूंछ आती है। कर्म भूमि, भोगभूमि आदि सभी काल पर अवलम्बित हैं। यहां तक कि मोक्ष भी भवस्थिति पूर्ण होने पर ही होता है। अतएव काल ही वास्तव में कार्यसाधक है।

स्वभावचन्द्र— आप कह क्या रहे हैं? काल, प्रारब्ध और पुरुषार्थ स्वभाव की अनुकूलता बिना अकिंचित्कर हैं। आम की गुठली में आम का पेड़ होने का स्वभाव है, इसी कारण माली का पुरुषार्थ सफल होता है, इसीसे समय पर पेड़ होता है। पुरुषार्थ, प्रारब्ध, काल और नियति को तब बहादुर समझूं, जब ये निबोली से आम का पेड़ उत्पन्न कर देवें, ग्रीष्म ऋतु में ठण्ड उत्पन्न कर दें, अग्नि को शीतल बना दें, स्त्री के मुंह पर दाढ़ी-मूंछ उगा दें। परन्तु यह सब असंभव है। जिस वस्तु का जैसा स्वभाव है वही काल प्रभृति से संभव है। स्वभाव-विपरीत कोई कार्य काल आदि से [illegible] साध्य नहीं हो सकता। हां काल में चमत्कार हो [illegible] कलकत्ता से बीकानेर तक आने

में पहले जितना समय लगता था, उतना अब नहीं लगता। औषधप्रयोग से युवावस्था में भी बाल बगुला के समान सफेद हो सकते हैं और वृद्धावस्था में भी काले रह सकते हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि जैसी मेरी अखण्ड सत्ता तीनों कालों और तीनों लोकों में व्याप्त है वैसी काल आदि की नहीं है। चाहे जिस देश में चले जाइये, दो हाइड्रोजन के परमाणुओं और एक ऑक्सीजन के परमाणु से ही पानी बनेगा, क्योंकि पानी की उत्पत्ति का यही स्वभाव है। अधिक क्या कहूं? स्वभाव ही मुख्य कारण है। जिसके बिना कार्य की उत्पत्ति कदापि संभव न हो और जिसके होने पर ही कार्य उत्पन्न हो सके, उसे कारण कहते हैं।

न्यायशास्त्रोक्त यह लक्षण स्वभाव में ही घटित होता है। अतएव स्वभाव को ही मुख्य कारण समझना चाहिए।

कर्मचन्द्र— माननीय महाराजाधिराज और सभ्य राजनो! स्वभावचन्द्रजी के वचन अहङ्कार-परिप्लुत हैं और कालचन्द्रजी का कथन मिथ्या आत्मश्लाघा के सिवाय कुछ मूल्य नहीं रखता। सत्य बात यह है कि काल और स्वभाव मेरे अनुगामी हैं। एक उदर से, एक ही साथ दो बालक जन्म लेते हैं, पर एक बुद्धिमान् होता है दूसरा मूर्ख। उत्पत्तिकाल और स्वभाव दोनों का समान है, तथापि उनमें जो विषमता होती है, उसका कारण कर्म ही है। एक सेव्य, दूसरा सेवक, एक पालखी में बैठने वाला दूसरा पालखी उठाने वाला, मेरे ही प्रबल प्रताप से बनता है। राजा को रंक और रंक को राजा बनाना मेरे बायें हाथ का खेल है। एकेन्द्रिय को पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय को एकेन्द्रिय कर देना मेरा

ही कार्य है। बड़े से बड़ा चक्र मुझे वञ्चित नहीं कर सकता। मेरी सत्ता सर्वोपरि है।

पुरुषार्थसिंह—बहुत हुआ, अब बस करो। बहुत देर से अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बन रहे हो। जरा मेरी ओर देखो। तुम्हें उत्पन्न करने वाला, बढ़ाने वाला, और उदय में लाने वाला कौन है? इस प्रकार जनक की अवहेलना करना क्या शिष्टता है? मैंने तुझे उत्पन्न किया, तेरा बल बढ़ाया और जब फलाभिमुख करता हूँ तभी तुम (कर्म) और स्वभाव मिलकर फल प्रदान कर सकते हो। इतने पर भी मैं चाहूँ तो तुम्हें उलटपलट सकता हूँ— शुभ से अशुभ और अशुभ से शुभ कर सकता हूँ। जहाँ तुम्हारी पैठ नहीं वहाँ भी मेरी सामर्थ्य का स्रोत अखण्ड प्रवाहित होता है। तुम प्राणियों को संसार में भ्रमण करा सकते हो पर मुक्त करने की सामर्थ्य मुझ में ही है। तुम्हारा विध्वंस करके मैं जीवों को मुक्त करता हूँ। सज्जनो! यदि तुम कर्म के भरोसे बैठे रहोगे तो धोखा खाओगे। भाग्यवान् होते हुए भी अभागी बन जाओगे। आलस्य तुम्हें घेर लेगा और सामर्थ्य की कमर तोड़ देगा। पुरुषार्थ द्वारा संचित शुभ कर्म भी वर्तमान कालीन पुरुषार्थ के बिना, शुभ फल नहीं दे सकते। जहाज चलाने के समस्त साधनों के होते हुए भी, चतुर खलासी के बिना जहाज ठीक-ठीक नहीं चल सकता। पुरुषार्थ के बिना प्राणियों की यही दशा होती है। मित्रो! तुम अपने जीवन में सुख की सामग्री संचित करना चाहते हो, भाँति-भाँति की आधि-व्याधियों से मुक्त होना चाहते हो, तो पुरुषार्थ करो। पुरुषार्थ ही पुरुषार्थ है। तुम्हारा पुरुषार्थ तुम्हारे समस्त दुर्भाग्य, दुःख और दरिद्रता को दूर करेगा। प्राणी पर्याप्त पुरुषार्थ करे तो संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं है, जिसे वह पूर्ण न कर सके

पीना रूप फल प्राप्त करता है। वह तब ही उस कक्षा में प्रविष्ट हो सकता है जब दूसरी शाला में उसने आठ-नौ वर्ष पहले अध्ययन कर लिया हो। अतः पहले काल की आवश्यकता पड़ती है।

एक पशु-सदृश, अध्ययन में लगन न रखने वाले छात्र को उतना समय मिला हो तो भी वह उक्त कक्षा में प्रविष्ट नहीं हो सकता। इससे यह सिद्ध है कि काल के साथ अभ्यास करने की रुचि, मन स्थिरता, सभ्यता आदि शिक्षणयोग्य स्वभाव की भी आवश्यकता है। बिना स्वभाव के काल व्यर्थ होता है, इसलिए काल का अंतिम स्वभाव भी कार्यसाधक है।

सुशील हो, पढ़ने में रुचि हो पर बुद्धि न हो तो भी छात्र उक्त कक्षा में प्रविष्ट नहीं हो सकता, न उत्तीर्णता प्राप्त कर सकता है। अतएव बुद्धि की आवश्यकता है। बुद्धि पूर्वकृत कर्मों से प्राप्त होती है। इस कारण तीसरे पूर्वकृत कर्म की भी आवश्यकता है।

इन तीन कारणों के योग से विद्यार्थी [illegible] में प्रविष्ट होता है तब मुख्य रूप से पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है। नियमित रूप से शाला में जाना, सावधान हो कर पाठ सुनना, याद करना, आदि पुरुषार्थ न किया जाय तो उल्लिखित तीनों कारण निष्फल होते हैं। इस समय में तीनों कारण गौण और पुरुषार्थ मुख्य कारण होता है।

कोई विद्यार्थी पुरुषार्थ भी करे परन्तु पुरुषार्थ द्वारा जब [illegible] बाधा उपस्थित हो जाय तो भी वह उत्तीर्ण नहीं हो सकता। [illegible] भिन्न नियति की [illegible] अतः नियत

पर उसका उपयोग करने के लिए प्रतिभा-शक्ति की आवश्यकता
है । मनबोध और निर्भयसिंह में बड़ी घनिष्ठता थी-दोनों
की गाढ़ मैत्री थी । एक दिन दोनों मित्र वन्य मार्ग से दूसरे
गाँव जा रहे थे कि रीछ की गुर्राहट सुनाई दी । निर्भयसिंह
अपने मित्र को छोड़ पेड़ पर चढ़ गया । मनबोध पेड़ पर चढ़ना
न जानता था । वह थोड़ी देर तक मित्र की ओर ताकता रहा
कि वह कुछ सहायता करेगा, परन्तु जब उसने तोते की तरह
आँखें बदल लीं तो मनबोध ने धोखेबाज़ मित्र से निराश हो
सच्चे मित्र धैर्य और प्रतिभा का आश्रय लिया और श्वास रोक
कर मुर्दे की नाईं पृथ्वी की गोद में लेट रहा । रीछ आया और
मनबोध को मुर्दा समझ छोड़ गया । मनबोध मरते-मरते
बच गया ।

भले ही यह कहानी कल्पनाप्रसूत हो पर इससे मिलने वाली
शिक्षा वास्तविक और बहुमूल्य है । यदि मनबोध के पास उस
समय धैर्य नामक अस्त्र न होता तो निस्सन्देह वह उस घातक
पशु का शिकार हो गया होता । साथ ही सांस रोक कर मुर्दों
की तरह पड़ रहने की अनोखी सूझ या कल्पनाशक्ति न होती तो
भी उसकी प्राणरक्षा संभव न थी । यह स्मरण रखना चाहिए
कि यदि धैर्य विद्यमान हो तो प्रतिभा स्वयं प्रस्फुटित हो जाती
, घबराहट के समय प्रतिभा का प्रस्फोट नहीं होता ।

बिना आत्मविश्वास की दृढ़ता के हमारी उन्नति की आशा
ीं की जा सकती । दृढ़प्रतिज्ञ और कर्मवीर पुरुष भी आत्म-
श्वास के बिना अपने साध्यपथ को सुगम नहीं बना सकते ।
ुत गम्भीरता तथा उच्चतम धैर्य के सहयोग से ही हम
चशिखर को समुन्नत और शीघ्र प्राप्त कर सकते हैं । दुर्बो-

सनाओं के पीछे पड़ना आत्मविश्वास नहीं कहलाता वरन् दृढ़ता-विशिष्ट अन्तः करण में रहने वाली एक अलौकिक शक्ति को आत्म-विश्वास कहते हैं। सत्कार्य करने में दृढ़तर मानसिक अनुराग रूप आत्मविश्वास धैर्य की भित्ति है। निरन्तर कर्मशीलों को दुर्वासनाएँ नहीं सता सकती, उनका अड्डा निठल्ला जीवन है। अतएव यदि आपको वासनाविहीन और सफल जीवन बिताना है तो निरन्तर कार्यरत रहिए, धैर्य रखिए, आपका अभीष्ट आप ही सिद्ध हो जायगा। आपकी महत्वाकांक्षा भी समय पाकर अपने उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच जायगी।

ज्यों ही आपको दुर्वासनायें सतावें त्यों ही सत्कार्य में लग जाइए। ऐसा न करेंगे तो दुर्वासनाएँ आपके जीवन को निकम्मा करके अन्त में नष्ट कर डालेंगी। अनादि काल से संसार-वारिधि के विविध विकराल विपत्ति-आवर्तों में चक्कर खाते-खाते बड़ी कठिनाई से प्राप्त मनुष्य जीवन रूपी चिन्तामणि को फिर दुर्वासनासागर में फेंक देना क्या बुद्धिमत्ता है? यदि यह मूर्खता है— और सचमुच ऐसा ही है— तो आप मूर्खता के मार्ग में गमन न कीजिए। धैर्य के साथ जीवन के साध्य की ओर बढ़ते जाइए, निश्चय आपकी विजय होगी।

की स्वतन्त्रता के लिये जो अगणित कष्ट सहे हैं, उन्हें सुनकर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। इतिहास-विख्यात यवन-सम्राट् अकबर, महाराणा का प्रतिद्वन्द्वी था। वह समग्र भारतवर्ष पर एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित करने के लिए अतिशय व्यग्र और उन्मत्त हो रहा था। प्रताप उसके इस उन्माद की चिकित्सा कर रहे थे।

अनेकों बार यवन-सैन्य महाराणा प्रताप के प्रबल प्रताप में भस्म हो चुका था, परन्तु अकबर के पास प्रभूत सैन्य था। इधर, महाराणा के समर साधन न्यून होते गये, धन जन का विनाश हो गया, सहस्रों शूरवीर महाप्रस्थान कर गये, चहुं ओर शत्रु घिर आये, बाल-बच्चों के रक्षण की चिन्ता सवार हो गई, भर पेट भोजन दुर्लभ हो गया। यद्यपि महाराणा धीरवीर और मूर्तिमान साहस थे, तथापि उन्हें मेवाड़ के उद्धार की आशा न रही। इस दशा में भी वे अपने इस प्रण पर निश्चल रहे कि प्राण त्याग देंगे पर स्वाधीनता त्याग कर यवनों की अधीनता स्वीकार न करेंगे। अन्त में सब तरह से निराश हो कर प्रताप ने सिन्धु नदी के समीप जा रहने का विचार किया। उन्होंने अपने अमूल्य अश्रुओं से मेवाड़ को अर्घ्यादि प्रदान की और चलने को उद्यत हुए।

महाराणा प्रताप के अतिशय विश्वासपात्र प्रधानमंत्री भामाशाह को जब यह विचार विदित हुआ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

भामाशाह! धन्य है तुम्हारा देशप्रेम! धन्य है तुम्हारा औदार्य! धन्य है तुम्हारा कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेक! तुमने जैन जाति की, मेवाड़ की, और महाराणा की लाज रखली।

धन आते ही प्रतापसिंह ने सेना एकत्र करना आरम्भ कर दिया और अवसर देखकर मुगल दल पर टूट पड़े। दुर्दान्त राजपूतों ने अपनी उमड़-लहरों में यवनों को तिनके की तरह बहा दिया। मुसलमानों की सेना अत्यधिक थी, तथापि राजपूतों की दृढ़ता और देशोद्धार की कामना फलवती हुई। दो-तीन स्थानों के सिवाय समस्त मेवाड़ पर पुनः प्रताप की विजय-वैजयन्ती विलसित हो उठी।

वीरवर भामाशाह भी युद्ध में सम्मिलित हुए थे। उन्हें शूरता और शूरवीरोचित दयालुता-दोनों ने अपना आश्रय बनाया था। भयो सेना की पहली मुठभेड़ यवन-सेना नायक शाहबाजखाँ से हुई थी। वह भामाशाह के सामने आया। दोनों की तलवारें कृतान्त की विकराल जिह्वा के समान एक दूसरे के रक्तपान के लिए लपलपाने लगी। अन्त में बूढ़े भामाशाह ने शाहबाजखाँ की भुजा में एक ऐसा हाथ मारा कि उसकी तलवार झनझनाती हुई मानो लज्जित होकर जमीन पर आ रही। वह निरशस्त्र होगया। भामाशाह चाहते तो इस सुयोग से लाभ उठाकर उसका काम तमाम कर सकते थे, पर वे बोले—खां साहब! तुम हमारे प्रतिद्वन्द्वी हो, इस लिए तुम्हें खुदा ताला की हाज़िरी में भेजने का अवसर हाथ से न जाने देना चाहिए, तथापि निरशस्त्र पर वार करना वीरों का कर्त्तव्य नहीं है, अतएव छोड़ देता हूँ। तलवार हाथ में पकड़ो या चुपचाप यहाँ से खिसक कर अपनी

जान बचाओ। गीदड़ दुम दबाकर भागा, शेर ने उसका पीछा न किया।

वास्तव में भामाशाह भा-मा-शाह थे। मेवाड़-माता ने अपनी भावी विपत्ति का अनुमान करके अपने उद्धार के लिए ही शायद उन्हें जना था। उन्होंने उसका संकल्प पूरा किया। उनके वंशजों की मेवाड़ में अब तक बहुत प्रतिष्ठा । इतिहास में भामाशाह मेवाड़ के उद्धारक के नाम से सिद्ध हैं। उन्हीं के अनुपम त्याग से मेवाड़ का गौरव अक्षुण्ण था। जैनजाति के इस सपूत पर बच्चे-बच्चे को दर्प है।

पाठ आठवाँ

नैपोलियन बोनापार्ट

...ग्रह– बन्धन, लि। ... ...– ... ... । कुटिल–
...। ... – कम ... की ... । प्रजातंत्र– प्रजा द्वारा की जाने
...व्यवस्था, ... । अभियोग– मुकदमा, मानताई– अत्याचारी।
...भाव– सहयोग, एकता।

...त्मा में अनन्त शक्ति है परन्तु सर्वसाधारण जन, यह ...मने ही न पायें यदि समय समय पर कुछ महापुरुष आगम... विकसित रूप, उनके सामने न रक्खें। नेपोलियन भी ...श्रेष्ठ पुरुषों में से एक था। ... उसकी चाहे जितनी निन्दा

जान बचाओ। गीदड़ दुम दबाकर भागा, शेर ने उसका पीछा न किया।

वास्तव में भामाशाह भा-मा-शाह थे। मेवाड़-माता ने अपनी भावी विपत्ति का अनुमान करके अपने उद्धार के लिए ही शायद उन्हें जना था। उन्होंने उसका संकल्प पूरा किया। इनके वंशजों की मेवाड़ में अब तक बहुत प्रतिष्ठा है। इतिहास में भामाशाह मेवाड़ के उद्धारक के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हींके अनुपम त्याग से मेवाड़ का गौरव अक्षुण्ण रहा था। जैनजाति के इस सपूत पर बच्चे-बच्चे को दर्प है।

पाठ आठवाँ

नैपोलियन बोनापार्ट

मंगल– कल्याण, हित। प्रलय मचाना– उपद्रव पैदा करना। कुत्सित– ...उचित। ईर्ष्यानिर्माण– दल बनाने की क्रिया। प्रजातंत्र– प्रजा द्वारा की जाने ...ली शासनव्यवस्था, गणतंत्र। अभियोग– मुकदमा। आततायी– अत्याचारी। ...न्यभाव– सद्योग, एकता।

आत्मा में अनन्त शक्ति है, परन्तु सर्वसाधारण जन, यह ...त जानने ही न पावें यदि समय समय पर कुछ महापुरुष आत्म-...ति का विकसित रूप, उनके सामने न रक्खें। नैपोलियन भी ...न विशिष्ट पुरुषों में से एक था। शत्रु उसकी चाहे जितनी निन्दा

बनवाये थे * । किन्तु अपने शेष जीवन में अशोक साम्प्रदायिकता के मोह जाल से दूर हो गया था । उसने लोक के कल्याण के लिये सर्वमान्य शिक्षायें प्रचलित की थीं । यद्यपि उसकी शिक्षाओं में जैन प्रभाव अन्त तक दृष्टि पड़ता है । किन्हीं विद्वानों का कहना है कि अशोक ने लगभग अपने राज्य के १२ वें वर्ष में बौद्धधर्म को ग्रहण कर लिया था, किन्तु इस व्याख्या की पुष्टि केवल अर्वाचीन बौद्ध ग्रंथों से होती है, जिनके कथन पर सहसा विश्वास कर लेने को जी नहीं चाहता । हाँ, अशोक के शिलालेखों से यह पता जरूर चलता है कि उसका ध्यान बौद्धधर्म की ओर विशेष रीति से आकृष्ट रहा था । सचमुच अशोक एक उदार राजा था और संसार में वह अपने आपका अकेला है।

जहां एक ओर चन्द्रगुप्त की विशेषता उसके राजकौशल और रणचातुर्य में थी, वहां अशोक अपने धर्मप्रचार के कार्य के लिये प्रसिद्ध था । वह एक सम्राट् की अपेक्षा एक धर्मात्मा अधिक था । शायद अपने सारे जीवन में उसने केवल एक लड़ाई लड़ी और वह कलिङ्ग की लड़ाई थी । इस संग्राम में जो अगणित मनुष्यों की जानें गईं, उनसे अशोक के दिल को बड़ी चोट पहुंचाई । उसने अहिंसा न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया । इस निश्चय को उसने आजन्म जीवन भर निभाया और खूब निभाया । भारत में उसने अहिंसा धर्म का प्रचार अपने राजकर्मचारियों द्वारा करवाया । बड़ी २ शिलाओं और स्तम्भों पर उसने अपनी आज्ञायें अङ्कित करवाईं जो आज तक मौजूद हैं । लोगों के लिये औषधालय, धर्मशाला आदि बनवाये, पशुओं के लिये चिकित्सा

पोज खुदवाये। इतना ही क्यों ? यूनान मिश्र आदि विदेशों में
भी उसने अपने कर्मचारी अहिंसा का संदेश लेकर भेजे। सा-
रांशतः उसने भूमंडल पर अहिंसा धर्म का झण्डा ऊंचा करने
में कोई कसर बाकी न छोड़ी थी। इसमें उसे सफलता भी मिली—
लोगों में धर्म की बढ़वारी हुई और वे प्रेम पूर्वक रहकर सादा
जीवन आनन्द से बिताने लगे।

किन्तु अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य के उत्तराधिकारी इस
योग्य न हुये कि वे इस विशाल साम्राज्य की व्यवस्था समुचित
बनाये रखते। अशोक के बाद ही संभवतः मौर्य साम्राज्य दो
भागों में विभक्त हो गया था। उत्तर-पूर्वीय भाग पर उसका पुत्र
दशरथ अधिकार प्राप्त करके बैठ गया था और पश्चिमीय भाग
र सम्प्रति अधिकारी हुआ था। सम्प्रति अपने पितामह के
मान जैनधर्मानुयायी था। उसने जैनधर्म की प्रभावना के अनेक
ार्य किये थे। आन्ध्र-द्रमिल आदि देशों में उसने जैनोपदेशक
त कर जैन धर्म का प्रचार कराया था। इसके साथ ही
त-बाह्य देशों-जैसे अफगानिस्तान, ईरान, अरब आदि-में भी
ने जैन मुनियों के विहार और धर्मदेशना का सराहनीय
ध कराया था।

किन्तु दशरथ और सम्प्रति के बाद मौर्य्य राजाओं में कुछ
म न रहा। परिणाम इसका यह हुआ कि उनका पुष्यमित्र
एक सेनापति स्वयं राजा बन बैठा और सारे देश में
हीं सिक्का जम गया। फलतः मौर्य्यसाम्राज्य का अन्त हो
सका अन्त जरूर हो गया, परन्तु उसके दो चमकते हुये
अभूत पूर्व कार्यों के कारण वह सदा ही अमर है

दोष उस समय मालूम हो या नहीं। ज्ञान के तीन दोष हैं-सं
विपर्यय और अनध्यवसाय। कल्पना करो सन्ध्या के समय,
कि न तो अन्धकार का पूर्ण साम्राज्य स्थापित हुआ है न स
प्रकाश ही है, तुम किसी जंगल में सैर करने गये हो। वहां कु
दूरी पर तुम्हें एक ऊंचासा पदार्थ दिखाई दिया। तुम सहसा य
निर्णय नहीं करसकते कि यह क्या वस्तु है. अतएव सन्देह में पड़
जाते हो कि यह ठूंठ है या मनुष्य?, इस प्रकार एक दूसरे से
विरुद्ध दो पदार्थों की एकत्र प्रतीति होने लगती है। ऐसे
अनिश्चित ज्ञान को संशय या सन्देह कहते हैं।

विपर्यय उलट पलट को कहते हैं। जैसे उपर्युक्त समय में
रास्ते में रस्सी पड़ी हो और वह सांप मालूम होने लगे तो उस
उलटे ज्ञान को विपर्यय दोष दूषित ज्ञान कहेंगे।

मार्ग में चलते समय कभी कभी कोई चीज़ पैर से छू जाती
है, किन्तु तत्क्षण यह नहीं मालूम होता कि क्या हुआ है? जल्दी
में यह विचार आता है "अरे! यह क्या है?" इस प्रकार के
मामूली ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं। अध्यवसाय अर्थात्
"यह ऐसा ही है" इस प्रकार का निश्चय, और उस निश्चय का
न होना अनध्यवसाय है। इन तीनों दोषों में से यदि एक भी
दोष ज्ञान में विद्यमान हो तो वह प्रमाण नहीं प्रमाणाभास है, क्योंकि
उससे पदार्थ की दृढ़ प्रतीति नहीं होती।

निर्दोष ज्ञानों की संख्या निर्धारित नहीं की जासकती, और
वे सब प्रमाण हैं, अत एव प्रमाणों की भी संख्या नहीं बतलाई
जासकती। तथापि उन्हें दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं
(१ प्रत्यक्ष २) परोक्ष।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, किन्तु कर्मोदय के कारण पूर्ण ज्ञान प्रगट नहीं होता, जो होता भी है वह इन्द्रियों या मन के द्वारा होता है। उसी को परोक्ष कहते हैं। जो ज्ञान बिना इन्द्रियों और मन की मदद के स्वयमेव होता है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण भी दो प्रकार का होता है—एक तो पूर्ण (सकल) प्रत्यक्ष दूसरा आंशिक (विकल) प्रत्यक्ष। तीन काल, तीन लोक के समस्त पदार्थों को बिना इन्द्रिय आदि की सहायता के जिस के द्वारा यथार्थ जाना जावे उसे पूर्ण प्रत्यक्ष कहते हैं। आंशिक प्रत्यक्ष के दो विकल्प हैं-अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान। अवधिज्ञान बिना इन्द्रिय आदि की सहायता के सीमित काल और क्षेत्र की अपेक्षा लेकर मूर्तिक पदार्थों को जानता है। यह ज्ञान प्रत्येक देव और नारकी का स्वतः होता है। मनुष्य को भी तपस्या आदि के द्वारा प्राप्त हो सकता है।

मनःपर्ययज्ञान नियत देश और काल तक दूसरे के मन की बात जान लेता है। यह किसी-किसी मुनिराज को ही होता है।

इन ज्ञानों को वास्तविक या पारमार्थिक प्रत्यक्ष भी कहते हैं। क्योंकि एक लौकिक या सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी है, जो इन्द्रियजन्य होने के कारण वस्तुतः परोक्ष है किन्तु लोक में प्रत्यक्ष कहलाता है। जैसे चाक्षुष ज्ञान।

चाक्षुष ज्ञान चक्षुरिन्द्रिय-जन्य होने के कारण परोक्ष ही है, तथापि लोक में आँखों देखी बात प्रत्यक्ष देखी हुई कही जाती है। इसी लोक-प्रसिद्धि के अनुरोध से परोक्ष को भी सांव्यवहारिक विशेषण लगाकर प्रत्यक्ष कह दिया जाता है।

परोक्ष प्रमाण के मुख्य पाँच भेद हैं—(१) स्मृति (२) प्रत्यभिज्ञान (३) तर्क (४) अनुमान (५) आगम।

(१) स्मृति का अर्थ है स्मरण। जब हम किसी वस्तु ध्यानपूर्वक देखते या उसके विषय में कुछ सुनते हैं, तो कु देर बाद यद्यपि चित्तवृत्ति के अन्यत्र चले जाने के कारण उस या श्रुत वस्तु का उपयोग नहीं रहता, तथापि वह हमारी ज्ञा वृत्ति से सर्वथा परिच्युत नहीं होजाती, उसका अनुकूल संस्कार जिन संस्कार कहते हैं, बना ही रहता है। कालान्तर में उस वस्तु के सामने न होने पर भी किसी कारण से 'यह बालक' 'यह मनुष्य' इस प्रकार की प्रतीति के साथ वह संस्कार उद्बुद्ध होजाता है, उसको स्मृति कहते हैं।

(२) जब देखे या श्रुत वस्तु फिर सामने आजाती है तब हमें यों प्रतिभास होता है—"अरे! यह तो वही कुत्ता है जिसने मुझे काट खाया था।" इस प्रकार के ज्ञान में दो बातें हैं-प्रथम तो अतीतकालीन स्मरण जो 'वही' शब्द से प्रगट हो रहा है। दूसरा वर्तमानकालीन प्रत्यक्ष, जो 'यह' से ध्वनित है। तात्पर्य यह कि यह ज्ञान स्मृति और प्रत्यक्ष के मिलने से बनता है और पहले अनुभव किये हुए तथा वर्तमान में दिखाई देते हुए पदार्थ के एकत्व को सिद्ध करता है। अतएव इसकी परिभाषा यह समझनी चाहिये-जो ज्ञान स्मृति और प्रत्यक्ष से उत्पन्न हो, पदार्थ की भूत और वर्तमान पर्याय के एकत्व को प्रदर्शित करता हो वह प्रत्यभिज्ञान है। प्रत्यभिज्ञान के और भी कितने ही भेद हैं, जिनका यहां विस्तारभय से उल्लेख नहीं किया जा सकता।

(३) तीसरा भेद तर्क है। संसार में ऐसी बहुतसी वस्तुएं हैं जिनमें ऐसा सम्बन्ध पाया जाता है कि ये एक दूसरे के बिना नहीं होसकती। अग्नि और धूम इस विषय के सुगम और

सुन्दर उदाहरण है। धूम जहां कहीं, और जब कभी होगा, अग्नि ही होगा, बिना अग्नि के कभी और कहीं नहीं हो सकता। इ सम्बन्ध को 'अविनाभाव' कहते हैं। इस अविनाभाव जानने वाला ज्ञान तर्क कहलाता है।

(४) अविनाभाव सम्बन्ध वाली एक वस्तु को देखने दूसरी का भी बोध हो जाता है, जैसे धुएं को देखने से अ का सद्भाव अवश्य ज्ञात हो जाता है। इसी ज्ञान को अनुमा कहते हैं।

(५) सर्वज्ञ भगवान ने केवलज्ञान से प्रत्यक्ष जान कर उपदेश दिया है उस युक्ति और प्रमाण से अबाधित उपदेश होने वाले ज्ञान को आगम प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष और अनुमा से अविरुद्ध सर्वज्ञप्रतिपादित शास्त्रों को भी आगम कहते हैं, क्यों उनसे भी सम्यग्ज्ञान होता है।

परस्पर विरुद्ध मतों के कारण किसी बात को स्वीक या अस्वीकार करने में बड़ा उलझन पड़ती है उस समय यथा और मिथ्या मत कौन-सा है? यह निर्णय करने के लिए प्रमा ही काम में आता है इसी प्रयोजन के लिए प्रमाणों की व्यवस की गई है हमें चाहिए कि प्रत्येक विषय को प्रमाण की कसौ पर कसकर निर्णय करें, फिर स्वीकार करें।

हर्षोन्मत्त हो उठी और प्रभु से मंगल-कामना करने लगी। में प्रशान्त महासागर ने घोर अशान्त रूप धारण कर लिया उसकी उठती हुई हिलोरें जापानियों को स्वागमन का आदे देने लगीं। आकाश में हिमोपल की अधिकतर वृष्टि होने लगी घिर पड़ने ही गये, किन्तु वीर जापानी जन्म भूमि के हेतु जान का कब मोह करते हैं! वे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते गये। अन्त में तूफान इतना प्रबल हो गया कि पद पद पर मृत्यु का भय होने लगा। उनका बेड़ा यह आघात सहन न कर सका और छिन्न-भिन्न हो गया। यहां तक कि पोत भी एकत्र न रह सकें। सब अन्धकार में यत्र-तत्र भटकने लगे। झंझावात के भयंकर झोंकों ने उन्हें निर्दिष्ट मार्ग से दूसरी दिशा में धकेल दिया। अब किस प्रकार समुचित आक्रमण किया जाय? पोर्ट आर्थर दुर्ग पर सज्जित तीन सौ प्रलयकारिणी तोपों से किस भांति रक्षा होगी? प्रबल शत्रु के आक्रमण से कैसे बच सकते हैं? इत्यादि प्रश्न उठना स्वाभाविक है। अब अपने विश्रामस्थल पर लौट आने के अतिरिक्त अन्य गति न रह गई। किन्तु, क्या भय सच्चे देशो-द्धारकों को कर्तव्यच्युत कर सकता है? क्या वे मृत्यु से डर कर पीछे पैर हटा सकते हैं? नहीं कदापि नहीं। अन्त में रात्रि के तीन बजे एक निःशब्द नौका भटकती हुई पोर्ट आर्थर के सम्मुख आ पहुंची। उसका नाम असागिरी था और उसका अध्यक्ष था वीर कप्तान इसाकवा। वीर इसाकवा के सम्मुख मातृभूमि की मूर्ति फिर रही है और वह निर्भयता पूर्वक आक्रमण की धुन में मस्त है। उस नौका [illegible] है न दुर्ग पर [illegible] नाश का कौन वह लक्ष्य पूर्ति में निरन्तर प्रयत्नशील रहा। इसाकवा! तेरा स्वदेशानुराग और वीरता धन्य है!

इतने में रूसियों ने सर्च लाइट के प्रकाश में उसे देख लिया। उन्होंने देखा कि एक क्षुद्र नौका आक्रमण करने की ताक में है जिसे नष्ट करने के लिए एक ही गोला पर्याप्त है। फिर क्या था, पोर्ट आर्थर की तीन सौ विनाशिनी तोपें एक साथ ही गर्ज उठीं और होने लगी भयंकर वह्नि-वृष्टि। किन्तु भाग्य से 'असा गिरी' को एक भी गोले ने स्पर्श न किया। वह धनुष से परित्यक्त तीर की तरह शीघ्र ही बन्दरगाह में प्रविष्ट हो गया। अब शत्रु की तोपों का गर्जन बन्द हो गया, क्योंकि अपने पक्ष के तोपों की हानि होने की सम्भावना थी। पोर्ट आर्थर में प्रवेश कर उसने देखा कि मार्ग में एक भीमकाय युद्धपोत खड़ा है, जो अपने एंजिन से कज्जलाकार धूम्र उगल कर नभमण्डल पूरित कर रहा है। फिर क्या था, झट उस पर टारपीडो नामक यंत्र का प्रहार किया। निशाना ठीक बैठा, जहाज चूर्ण-चूर्ण हो गया। यह कार्य समाप्त कर असागिरी लौटने लगा तो शत्रुपक्ष ने उस पर प्रबल आक्रमण किया। वह उनका वीरतापूर्वक सामना करता हुआ जब खुले समुद्र में पहुँचा तो तोप वृष्टि पुनः प्रारंभ हुई। असागिरी आत्मरक्षा करता हुआ शीघ्रता पूर्वक लौटने लगा। वह शनैः शनैः शत्रुओं की तोपों की पहुंच से बाहर हो गया और सकुशल अपने विश्रामस्थल पर पहुँच गया। इस पर जापानियों में हर्ष का पारावार उमड़ पड़ा।

यद्यपि इससे रूस का एक ही जहाज नष्ट हुआ केवल दो करोड़ की हानि हुई, किन्तु यह जलयुद्ध की अभूतपूर्व घटना है। जिस पोर्ट आर्थर के सम्मुख महान राष्ट्रों की विशाल शक्तियों को साहस न होता था वहां केवल एक गोले से नष्ट होने योग्य नौका की ऐसी वीरता क्या अत्यन्त विस्मयकारिणी नहीं है?

रहना, बल्कि इसके आगे यह देखना कि दूसरों से खरीदी हुई चीज़ के साथ तुलना करने पर वह सस्ती और अच्छी प्रमाणित हो, ग्राहक की रुचि को ताड़ लेना, ये सब बिक्री बढ़ाने के साधन हैं। व्यापारी को मौसिम और वस्तुओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। साथ ही जिस वस्तु का और जिस व्यक्ति के साथ व्यापार करे उसकी पूरी जानकारी भी आवश्यक है। जो २ नयी चीज़ें निकलें उनका ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि नयी चीज़ में प्रायः अधिक लाभ होता है। लेकिन अधिक लोभ में फँसना लाभदायक नहीं है।

व्यापार सम्बन्धी कुछ लाभदायक बातें नीचे सातवें, आठवें और बारहवें पाठ में बतलाई गयी हैं। उनके अतिरिक्त विशेष नियम संक्षिप्त रूप से यहां लिखे जाते हैं।

(१) —सदा नक़द दाम लेकर बेचने से काम नहीं चलता कभी-कभी उधार भी देना पड़ता है। परन्तु उधार देने से पहले ग्राहकों की जाँच कर लेना चाहिए। यदि करार पर या तकाज़ा करने पर रुपया चुकता न हो तो दूसरी बार माल नहीं देना चाहिए। यदि थोड़ा भी सन्देह हो तो उधार देना ही न चाहिए।

(२) पक्के मकान में अथवा जहां हानि होने की संभावना न हो वहां माल रखना चाहिए। जिस माल में हानि होने की आशंका हो उसका बीमा करा देना श्रेष्ठ है।

[illegible]

रहना, अन्यथा इनमें नफे पर देखना कि दूसरों से खरीदी हुई चीज के साथ तुलना करने पर वह सस्ती और अच्छी प्रमाणित हो, ग्राहक की रुचि को ताड़ लेना, ये सब बिक्री बढ़ाने के साधन हैं। व्यापारी को मौसिम और वस्तुओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। साथ ही जिस वस्तु का और जिस व्यक्ति के साथ व्यापार करें उसकी पूरी जानकारी भी आवश्यक है। जो र नयी चीजें निकलें उनका ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि नयी चीज में प्रायः अधिक लाभ होता है। लेकिन अधिक लोभ में फँसना लाभदायक नहीं है।

व्यापार सम्बन्धी कुछ लाभदायक बातें नौवें आठवें, सोलहवें और सत्रहवें पाठ में बतलाई गयी हैं। उनके अतिरिक्त विशेष नियम संक्षिप्त रूप से यहाँ दिये जाते हैं।

(१)—सदा नकद दाम लेकर बेचने से काम नहीं चलता कभी-कभी उधार भी देना पड़ता है। परन्तु उधार देने से पहले असामी की जाँच कर लेना चाहिए। यदि करार पर या तकाजा करने पर रुपया चुकता न हो तो दूसरी बार माल नहीं देना चाहिए। यदि थोड़ा भी सन्देह हो तो उधार देना ही न चाहिए।

(२) पक्के मकान में ऐसा जहाँ हानि होने की संभावना न हो वहीं माल रखना चाहिए। जिस माल में हानि होने की आशंका हो उसका बीमा करा देना श्रेष्ठ है।

कल्पना कीजिए इस समय जुलाहे को अन्न की आवश्यकता है । वह किसान को वस्त्र देकर अन्न लेना चाहता है परन्तु किसान को इस समय वस्त्र की आवश्यकता नहीं है । ऐसी परिस्थिति में आदानप्रदान होना संभव नहीं, न मनुष्य जाति का निर्वाह ही हो सकता है । इस कठिनाई को हल करने के लिए सिक्के की सृष्टि हुई है । सिक्के के द्वारा प्रत्येक समय प्रत्येक वस्तु खरीदी जा सकती है । इससे वाणिज्य में बहुत सुभीता होता है, अत एव वर्तमान काल में सिक्के से ही व्यापार होता है । सिक्का आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन का साधन होने के कारण व्यवहित साधन है । अन्नवस्त्र साधन नहीं है जो आवश्यकतापूर्ति के लिए अनिवार्य और साक्षात् साधन हो ।

लाभ की दृष्टि से खरीदना और बेचना व्यापार कहलाता है । प्रत्येक चीज चाहे जहाँ खरीदने या बेचने से लाभ नहीं हो सकता । अतः जिस वस्तु की उत्पत्ति अधिक और खपत कम हो, वहां से खरीद कर उस जगह बेचना चाहिए जहां पैदावार कम और खपत अधिक हो । खपत का अनुमान रहन-सहन और आवश्यकताएं देख कर किया जा सकता है । वस्तुओं का संचय (स्टाक) खपत और उन वस्तुओं पर अवलम्बित है । जो जिस जीव बेकाम होने वाली हो या उसका विक्रय अधिक न होता हो उसका अधिक संचय न रखना चाहिए । संचय भले ही अधिक न हो पर सर्वसाधारण के उपयोग में आने वाली सस्ती और महंगी सब प्रकार की चीजें अवश्य रखना चाहिए जिससे ग्राहक प्रसन्नतापूर्वक इच्छानुसार माल खरीद सके । ग्राहक के साथ मित्र और भद्र व्यवहार दुकान का सब से पहला

प्रतिष्ठित, सदाचारी, नीतिनिष्ठ, अनुभवी, धैर्यशाली और [illegible] होना चाहिए।

(७) जिस फर्म में बेचने और खरीदने वाले उदारहृदय, कुलीन, नीतिज्ञ, धर्मी, स्वस्थ और शिक्षित गुणविशिष्ट हों, उसमें सम्मिलित हो जाना या उसे सम्मिलित कर लेना लाभदायक है।

(८) जिस व्यापारी की दुकान पर उच्च श्रेणी के प्रतिष्ठित पुरुष आते हैं और सच्चाई के साथ व्यापार होता है, उसकी धाक जम जाती है। उसकी देखादेखी अन्यान्य लोग आते हैं। इसलिए ऐसे पुरुषों से व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए।

(९) व्यापार साझे में करना हो तो साझेदारी की लिखा-पढ़ी कराते समय एक ऐसे निष्पक्ष और अनुभवी व्यक्ति को पंच नियत कर देना चाहिए जो की हुई शर्तों का पालन न करने, शर्तों के विरुद्ध आचरण करने, साझेदारी टूट जाने, अथवा किसी अन्य प्रकार का विसंवाद उत्पन्न होने, की अवस्था में पारस्परिक निपटारा कर देवे, जिससे लिखा-पढ़ी या अन्यान्य कार्यों में बाधा न पड़े।

(१०) गिरवी रखना—मकान के किराये की अपेक्षा ब्याज कम आता हो, चार-छः माह में मकान छुड़ा लेने का विश्वास हो और अनिवार्य कारण उपस्थित हो जाय, तो अल्प काल के लिए मकान गिरवी रख देने में उतनी हानि नहीं। यदि छुड़ा सकने की सम्भावना न हो तो कदापि नहीं रखना चाहिए। प्रायः ऐसा देखा गया है कि छुड़ा न सकने के कारण मकान आधे दामों में बेचना पड़ता है फिर भी ऋण नहीं उतरता। गहनों को गिरवी रखने की अपेक्षा उन्हें बेच देना लाख दर्जे अच्छा है।

(३) जो माल आवश्यक-यथावश्यक न हो, शीघ्र बिक सके
पर यथाशक्ति ७० , से ८० प्रतिशत तक हुंडी स्वीकार की
है। यदि बाजार मन्दा पड़ जाय या मन्दी का डर हो तो
आढ़तिया को समाचार देकर माल बेचने की स्वीकृति
चाहिए। यदि आढ़तिया स्वीकृति न दे तो कुछ रकम डिपॉ
रखने के लिए कहा लेनी चाहिए। दोनों में से एक भी स्वी
न करे तो वकील या फर्म के द्वारा उसको रजिस्ट्री से नोटि
देकर माल बेच डालना चाहिए। इस सम्बन्ध में जो पत्र-व्य
हुआ हो उसे सुरक्षित रखना और बिक्री का हिसाब-कि
उसके पास भेज देना आवश्यक है।

(४) साझीदारों का कर्तव्य है कि फर्म की रकम फर्म में
रखें, अधिक रकम न उठावें, जिससे कि फर्म कमजोर न प
पावे और एक साझीदार के हिस्से की रकम दूसरे को न देनी प

(५) अपना ट्रेडमार्क या मार्का चलाने से माल प्रसिद्ध
जाता और व्यापार जम जाता है। यदि प्रतिष्ठित मार्क
किसी कारण से बेच भी दिया जाय तो लाखों रुपये के उ
के उपजते हैं। अकसर अंग्रेजों में ऐसा होता है। नयी तरह
चीज निकाली जाय और वह चालू हो जाय तो अधिक
होता है। नया शहर बस रहा हो और उसकी उन्नति की
सम्भावना हो तो उन्नति होने पर अधिक लाभ होता है। क्योंकि
पहले-पहल जमीन आदि कम मूल्य में मिल जाती है। जहाँ जि
जिन्स की बिक्री की अधिक दुकानें न हों वहां उसका व्यापार करने
से अधिक लाभ उठता है।

(६) फर्म के प्रधान कार्यकर्त्ता का साझा रख देने से
आच्छा और दिलचस्पी से होता है। किन्तु, कार्यकर्त्ता परिश्र

प्रतिष्ठित, सदाचारी, नीतिनिष्ठ, अनुभवी, दीर्घदर्शी और धनाढ्य होना चाहिए।

(७) जिस फर्म में बेचने और खरीदने वाले उदारहृदय, सुजन, नीतिज्ञ, धर्मी, स्वच्छ और उल्लिखित गुणविशिष्ट हों, उसमें सम्मिलित हो जाना या उसे सम्मिलित कर लेना लाभप्रद है।

(८) जिस व्यापारी की दुकान पर उच्च श्रेणी के प्रतिष्ठित पुरुष आते हैं और सज्जनों के साथ व्यापार होता है, उसकी धाक जम जाती है। उसकी देखादेखी अन्यान्य लोग आते हैं। इसलिए ऐसे पुरुषों से व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए।

(९) व्यापार साझे में करना हो तो साझेदारों की लिखा-पढ़ी कराते समय एक ऐसे निष्पक्ष और अनुभवी व्यक्ति को पंच नियत कर देना चाहिए जो की हुई शर्तों का पालन न करने, शर्तों के विरुद्ध आचरण करने, साझेदारी टूट जाने, अथवा किसी अन्य प्रकार का विसंवाद उत्पन्न होने, की अवस्था में पारस्परिक निपटारा कर देवे, जिसमें लिखा-पढ़ी या अन्यान्य कार्यों में बाधा न पड़े।

(१०) गिरवी रखना—मकान के किराये की अपेक्षा ब्याज कम भरना हो, चार-छह मास में मकान छुड़ा लेने का विश्वास हो और अनिवार्य कारण उपस्थित हो जाय, तो अल्प काल के लिए मकान गिरवी रख देने में उतनी हानि नहीं। यदि छुड़ा सकने की सम्भावना न हो तो कदापि नहीं रखना चाहिए। प्रायः ऐसा देखा गया है कि छुड़ा न सकने के कारण मकान औने दामों में बेचना पड़ता है [illegible] उतरना। [illegible] [illegible] देना [illegible]

प्रतिष्ठित, सदाचारी, नीतिनिष्ठ, अनुभवी, दूरदर्शी और धनवान होना चाहिए।

(७) जिस फर्म में देखने और चलाने वाले उदार हृदय, कुशल, नीतिज्ञ, धनी, स्वच्छ और शिक्षित गुणविशिष्ट हों, उसमें सम्मिलित हो जाना या उसे सम्मिलित कर लेना लाभप्रद है।

(८) जिस व्यापारी की दुकान पर उच्च श्रेणी के प्रतिष्ठित पुरुष आते हैं और सज्जनों के साथ व्यापार होता है, उसकी धाक जम जाती है। उसकी देखादेखी अन्यान्य लोग आते हैं। इसलिए ऐसे पुरुषों से व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए।

(९) व्यापार साझे में करना हो तो साझेदारों की लिखा-पढ़ी कराते समय एक ऐसे निष्पक्ष और अनुभवी व्यक्ति को पंच नियत कर देना चाहिए जो की हुई शर्तों का पालन न करने, शर्तों के विरुद्ध आचरण करने, साझेदारी टूट जाने, अथवा किसी अन्य प्रकार का विसंवाद उत्पन्न होने, की अवस्था में पारस्परिक निपटारा कर देवे, जिससे लिखा-पढ़ी या अन्यान्य कार्यों में बाधा न पड़े।

(१०) गिरवी रखना—मकान के किराये की अपेक्षा व्याज कम पड़ता हो, चार-छह मास में मकान छुड़ा लेने का विश्वास हो और अनिवार्य कारण उपस्थित हो जाय, तो अल्प काल के लिए मकान गिरवी रख देने में उतनी हानि नहीं। यदि छुड़ा सकने की सम्भावना न हो तो कदापि नहीं रखना चाहिए। प्रायः ऐसा देखा गया है कि छुड़ा न सकने के कारण मकान आधे दामों में बेचना पड़ता है फिर भी ऋण नहीं उतरता। पहले ही गिरवी रखने की अपेक्षा उसे बेच देना लाख दर्जे अच्छा है।

(३) जो माल अगड़म-बगड़म न हो, शीघ्र बिक सके पर यथायोग्य ७०) से ९०) प्रतिशत तक हुंडी स्वीकार की है। यदि बाजार मन्दा पड़ जाय या मन्दी का रुख हो तो आढ़तिया को समाचार देकर माल बेचने की स्वीकृति चाहिए। यदि आढ़तिया स्वीकृति न दे तो कुछ ... रखने के लिए सेवा लेनी चाहिए। दोनों में से ... न करे तो वकील या फर्म के द्वारा जवाबी रजिस्ट्री से देकर माल बेच डालना चाहिए। इस सम्बन्ध में जो पत्र व्यवहार हुआ हो उसे सुरक्षित रखना और बिक्री का हिसाब भी उसके पास भी भेज देना आवश्यक है।

(४) साझीदारों का कर्तव्य है कि नफे की रकम फर्म में रखें, अधिक रकम न उठावें, जिससे कि फर्म कमजोर न पाने और एक साझीदार के हिस्से की रकम दूसरे को न देनी

(५) अपना ट्रेडमार्क या मार्का चलाने से माल प्रसिद्ध आता और व्यापार जम जाता है। यदि प्रतिष्ठित मार्के किसी कारण से बेच भी दिया जाय तो लाखों रुपये केवल के उपजते हैं। अकसर अंग्रेजों में ऐसा होता है। नयी तरह चीज़ निकाली जाय और वह चालू हो जाय तो अधिक होता है। नया शहर बस रहा हो और उसकी उन्नति की सम्भावना हो तो उन्नति होने पर अधिक लाभ होता है। क्यों पहले-पहल जमीन आदि कम मूल्य में मिल जाती हैं। जहाँ जिस की बिक्री की अधिक दुकान न हो वहां उसका व्यापार करने से अधिक लाभ उठता है।

(६) फर्म के प्रधान कार्यकर्ता का साझा रख देने से काम अच्छा और दिलचस्पी से होता है। किन्तु, कार्यकर्ता परिश्र

प्रतिष्ठित, सदाचारी, नीतिनिष्ठ, अनुभवी, दीर्घदर्शी और यशस्वी होना चाहिए।

(७) जिस फर्म में बेचने और खरीदने वाले उदारहृदय, कुशल, नीतिज्ञ, धर्मी, स्वस्थ और उल्लिखित गुणविशिष्ट हों, उसमें सम्मिलित हो जाना या उसे सम्मिलित कर लेना लाभप्रद है।

(८) जिस व्यापारी की दुकान पर उच्च श्रेणी के प्रतिष्ठित पुरुष आते हैं और सच्चाई के साथ व्यापार होता है, उसकी धाक जम जाती है। उसकी देखादेखी अन्यान्य लोग आते हैं। इसलिए ऐसे पुरुषों से व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए।

(९) व्यापार साझे में करना हो तो साझेदारी की लिखा-पढ़ी कराते समय एक ऐसे निष्पक्ष और अनुभवी व्यक्ति को पंच नियत कर देना चाहिए जो की हुई शर्तों का पालन न करने, शर्तों के विरुद्ध आचरण करने, साझेदारी टूट जाने, अथवा किसी अन्य प्रकार का विसंवाद उत्पन्न होने, की अवस्था में पारस्परिक निपटारा कर देवे, जिससे लिखा-पढ़ी या अन्यान्य कार्यों में बाधा न पड़े।

(१०) गिरवी रखना—मकान के किराये की अपेक्षा व्याज कम भरना हो, चार-छह माह में मकान छुड़ा लेने का विश्वास हो और अनिवार्य कारण उपस्थित हो जाय, तो अल्प काल के लिए मकान गिरवी रख देने में उतनी हानि नहीं। यदि छुड़ा सकने की सम्भावना न हो तो कदापि नहीं रखना चाहिए। प्रायः ऐसा देखा गया है कि छुड़ा न सकने के कारण मकान आधे दामों में बेचना पड़ता है। फिर भी ऋण नहीं उतरता। गहनों का गिरवी [illegible] जाता [illegible]

---

(३) जो माल अगड़म-बगड़म न हो, शीघ्र बिक सके पर यथायोग्य ७०) से ८०) प्रतिशत तक ... है। यदि बाजार मन्दा पड़ जाय या मन्दी का रुख हो तो ... आढ़तिया को समाचार देकर माल बेचने की स्वीकृति ... चाहिए। यदि आढ़तिया स्वीकृति न दे तो कुछ रकम ... रखने के लिए मँगा लेनी चाहिए। दोनों में से एक ... न करे तो वकील या फर्म के द्वारा जवाबी रजिस्ट्री से ... देकर माल बेच डालना चाहिए। इस सम्बन्ध में जो पत्र-व्यव... हुआ हो उसे सुरक्षित रखना और बिक्री का हिसाब-कि... उसके पास भी भेज देना आवश्यक है।

(४) साझीदारों का कर्त्तव्य है कि नफे की रकम फर्म ... रखें, अधिक रकम न उठावें, जिससे कि फर्म कमजोर न ... पावे और एक साझीदार के हिस्से की रकम दूसरे को न देनी ...

(५) अपना ट्रेडमार्क या मार्का चलाने से माल प्रसिद्ध ... जाता और व्यापार जम जाता है। यदि प्रतिष्ठित मार्क ... किसी कारण से बेच भी दिया जाय तो लाखों रुपये के ... के उपजते हैं। अकसर अंग्रेजों में ऐसा होता है। नयी तरह ... चीज़ निकाली जाय और वह चालू हो जाय तो अधिक ... होता है। नया शहर बस रहा हो और उसकी उन्नति की ... सम्भावना हो तो उन्नति होने पर अधिक लाभ होता है। ... पहले-पहल जमीन आदि कम मूल्य में मिल जाती है। जहाँ ... जिस की बिक्री की अधिक दुकानें न हों वहां उसका व्यापार ... से अधिक लाभ उठता है।

(६) फर्म के प्रधान कार्यकर्त्ता का साझा रख देने से ... अच्छा और दिलचस्पी से होता है। किन्तु, ...

व्यापारी को वस्तु के ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है । जिसे अपनी वस्तु का जितना ही अधिक ज्ञान होगा वह उतनी ही सफलता प्राप्त कर सकेगा। अमुक वस्तु के क्या उपादान हैं, वह किस प्रकार बनाई गई है, किन-किन कामों में आ सकती है उसमें क्या-क्या सुधार हो सकते हैं, उससे आर्थिक या अन्य प्रकार के क्या लाभ हो सकेंगे; इत्यादि बातें खरीददार को भली भाँति समझा दी जावें तो उसे खरीदने की उत्सुकता होती है इनके सिवाय खरीददार जो प्रश्न करे उसका स्पष्ट समाधान करना चाहिए । नयी निकली हुई वस्तु की उपयोगिता और लाभ समझाने की विशेष आवश्यकता पड़ती है । जो व्यापारी इतना नहीं करता और भविष्य में उस व्यापार में उन्नति की कल्पना नहीं कर सकता उसे उसमें हाथ ही न डालना श्रेयस्कर है

अपनी वस्तु के लाभ या गुणों को बखानते समय स्पष्टतया दूसरे की वस्तुओं की निन्दा व्यक्त न होनी चाहिए । कुशल खरीददार पर-निन्दा से कदापि प्रसन्न न होगा वरन् यही समझेगा कि यह अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बन रहा है । इससे जमी हुयी प्रतीति हवा हो जायगी, ग्राहक हाथ से निकल जावेंगे। उत्तम मार्ग यह है कि परायी वस्तु की छीछालेदर न करके अपनी वस्तु की उत्तमता प्रमाणित कर दी जाय। और अन्य की वस्तुओं से अपनी वस्तु की विशेषताएँ बता दी जाय। ऐसा करने से ग्राहक जब खरीदना स्वीकार करले तो बातों ही बातों में लिखित ऑर्डर ले लेना चाहिए । वायदा बदल जाता है परन्तु हस्ताक्षरित ऑर्डर प्रतिष्ठित पुरुष वापस लेना नहीं चाहता ।

इनके सिवाय अधोलिखित नियमों पर भी व्यापारी को लक्ष्य रखना चाहिए

(१) बड़े व्यापारी को ट्रैवलिंग एजेन्ट रखना चाहिए, जो माल का प्रचार करता हुआ नवीन ग्राहक बनावे, पुराने ग्राहकों से मिल कर उन्हें सन्तोष देता रहे, विभिन्न स्थलों के रीति-रिवाजों का अनुभव प्राप्त करता रहे, हिसाब-किताब और आसामी की जांच-पड़ताल करता रहे।

(२) ग्राहकों को वस्तु की आवश्यकता समझाकर उसके मन में खरीदने की इच्छा जागृत करना चाहिए।

(३) ग्राहक के साथ वार्तालाप करने में यह न टपके कि इस वस्तु के खरीदने में मेरा (व्यापारी का) ही स्वार्थ है।

(४) उत्साह और उद्योग के बिना एक भी कार्य सुसम्पन्न नहीं होता। व्यापार में तो प्रतिक्षण इनकी अतिशय आवश्यकता रहती है।

(५) प्रत्येक कार्य स्पष्ट और व्यवस्थित रीति से होना चाहिए इससे गड़बड़ नहीं पड़ता और कठिन कार्य भी बात की बात में हो जाता है।

(६) जिस स्थल पर व्यापार करना हो वहां के जल-वायु की अनुकूलता का विचार कर लेना चाहिए। स्वास्थ्य ठीक न रहा तो व्यापार नहीं हो सकता, यदि शरद् की मक्खी बन कर किया भी तो निष्फल-निरुपयोगी है। जो स्वस्थ नहीं उसके लिए 'स्व' वश सहारा दे सकता है।

(७) एकाध भूल भी कभी सफलता का साधन बन जाती है, यदि सचेष्ट रह कर उसकी पुनरावृत्ति न होने दी जाय।

(८) प्रतिज्ञापालन महत्वास्पद कर्त्तव्य है। जिससे जो प्रतिज्ञा करो उसे लिख रखो, जिससे विस्मरण न हो जाय। चाहे कुछ भी हो प्राणपन से प्रतिज्ञा पूर्ण करने का प्रयास करो।

(६) कर्ज़दार या सट्टा फाटका करने वाले को रुपये पैसे की जोखिम के काम पर नियुक्त करना ठीक नहीं, न अधिक उधार या कर्ज़ देना उचित है। किसी योग्य काम धन्धे में लगा देना अथवा सहायता दे देना बुरा नहीं है। रुपये-पैसे का सम्बन्ध न रखना ही अच्छा है। क्योंकि नीयत अच्छी होने पर भी मनुष्य सकट पड़ने पर बुरा-भला न देख कर सब कुछ कर बैठता है। अतः व्यापार में सावधानी रखनी चाहिए।

(१०) दुकान, गद्दी, घर आदि को सूना न छोड़े और ताले आदि का पूरा प्रबन्ध रखे तो चोरी आदि से बचाव हो सकता है। यात्रा करते समय स्टेशन मुसाफिरखाने या गाड़ी आदि में सोना नहीं चाहिए, क्योंकि जरा असावधानी होने से ही चोरी हो जाती है। अतः पूर्ण सावधान रहना चाहिए।

(११) भविष्य के नफे की सम्भावना पर किसी तरह का खर्च नहीं करना चाहिए। जैसे पाँच हजार मन कोई वस्तु खरीदी है। अब उसका मूल्य चार रुपये प्रतिमन चढ़ गया। ऐसी अवस्था में बीस हजार रुपये के लाभ की सम्भावना है। इस संभावना पर दस-पाँच हजार रुपया शादी आदि किसी कार्य में खर्च कर देना उचित नहीं है। क्योंकि जैसे चार रुपया प्रति मन भाव चढ़ गया है, वैसे ही उतना या उससे अधिक उतर भी सकता है। ऐसा खर्च कर देने से कभी प्रतिष्ठा नष्ट हो सकती है। साझीदार को भी इस लाभ की सम्भावना पर रकम नहीं उठाने देना चाहिए।

(१२) पूरा हिसाब लगाने से पहले, नफे या नुकसान का जितना अनुमान किया जाता है, हिसाब करने पर नफा लगभग आधा बैठता है परन्तु नुकसान दुगना बैठ जाता है।

(१३) यदि किसी चीज को तत्काल बेचने से लाभ हो रहा हो पर भाव चढ़ते जाने से अधिक लाभ होने की सम्भावना हो, तो

भी माल बिलकुल रोक नहीं लेना चाहिए-थोड़ा थोड़ा बेचते चला जाना चाहिए।

(१४) यदि व्यापारी वर्ष में एक भी बार खाता चुकता न करे, मँगाने पर भी रुपये न भेजे, जिसे सदैव आवश्यकता बनी रहे, चाहे जिसका रुपया जमा करता रहे, सदा पुर्जा काटता रहे, या हुंडी करता रहे; तो समझ लेना चाहिए कि वह निज पूँजी से अधिक व्यवसाय कर रहा है।

(१५) कार्यारम्भ करने से पहले उसकी योजना—रूपरेखा-टांक लेना आवश्यक होता है। व्यापार के विषय में ऐसा करना और भी आवश्यक है।

(१६) जो व्यापारी जितना भ्रमण करता है, उसमें उतना ही कौशल आता है और व्यापार के ढंग विदित हो जाते हैं। अत एव व्यापार-विस्तार के लिए देशाटन करना आवश्यक है।

(१७) आय से अधिक व्यय कदापि नहीं करना चाहिए। मुसीबतें झेलना बुरा नहीं,ऋण लेना बुरा है। परिस्थिति-विशेष में इष्ट मित्रों से सहायता लेना दूसरी बात है,परन्तु शादी आदि में यशोलिप्सा की पूर्ति के लिए ऋण का भूत सर पर सवार कर लेना अत्यन्त भयानक है।

(१८) ग्राहकों की वृद्धि उन्हें सन्तुष्ट करने से होती है। उन्हें जितनी सुविधा दी जायगी, ग्राहकों की उतनी ही संख्या बढ़ेगी। सुविधा या सतोष वाचिक ही नहीं वास्तविक होना चाहिए।

(१९) जिन आवश्यक वस्तुओं का क्रय करना हो उनकी पहले ही सूची तयार कर लो। उनसे अतिरिक्त अन्य वस्तु

पाठ सोलहवाँ

छत्रपति महाराज शिवाजी

का नाम अमीरखाँ था। यद्यपि अंग्रेजों ने पिंडारियों को द
दिया था तथापि देश में शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से
उन्होंने टोंक संस्थान अमीरखाँ को दे दिया था। प्रकृति देवी
अपनी उदारता से, अपनी मनमोहिनी शोभा का कुछ भाग टों
को भी प्रदान किया है।

इसी टोंक में ओसवाल जाति के स्थानकवासी संप्र
और बम्ब गोत्र में उत्पन्न, चुन्नीलालजी नामक एक धर्मपरा
सद्गृहस्थ रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम चांदकुँवर बा
था। यह देवी योग्य पत्नी, योग्य माता और धार्मिक कार्य
खूब निपुण थी। इन्हीं से विक्रम सं० १९२६ की आषाढ़
द्वादशी को पुत्ररत्न श्रीलालजी उत्पन्न हुए थे। उस समय
जानता था कि यही बालक भविष्य में धर्मात्मा, प्रतापी
दृढ़प्रतिज्ञ हो कर अपने निधन पश्चात् भी सत्पथप्रदर्शिका
य जीवन-घटनाएँ छोड़ जायगा? श्रीलालजी मनोहर
तेजस्वी, भव्याकृति, विशाल-भाल और प्रकाशित नेत्र वाले थे।

बालक के जीवन पर माता का अमिट प्रभाव पड़ता है।
श्रीलालजी की आदरणीय जननी चांदकुंवर बाई अत्यन्त
धर्मात्मा महिला थी। माता के धार्मिक भावों का प्रभाव उ
पर पर्याप्त रूप से पड़ा था। चांदकुंवर बाई ने मूर्ख माताओं
की भांति अपने लाड़ले लाल को सुन्दर परिधान पहना
दीठ (दृष्टि) न लगने देने के लिए नेत्र, गाल और कपाल पर
काजल लगाना, ही अपना कर्तव्य नहीं समझा था। उनके औ
जननी उन्हें शिशु अवस्था से ही साधु-साध्वियों के समीप
जाते थे। साधु-संगतिजन्य यही प्रभाव श्रीलालजी के जीवन

त्य-जीवन सफल करे। यौवन तो चार दिन की चन्द्रिका है।"
अन्त में ससम्मान विजय मिली वैराग्य को। मोह राक्षस
पूर्ण पराजय हुई। पर अभी एक संग्राम में और विजय पाना
' उच्च ध्येय का साधक यदि माता-पिता, भाई-भौजाई, पत्नी-
के मोह से अभिभूत न होकर, उनके आंसुओं पर विजय
र सके तो अपने जीवन को सार्थक कर लेना, उसके बायें
र का खेल है। इस युद्ध में एक ओर थे अध्यवसाय, संयमी-
त एवं दृढ़प्रतिज्ञ अकेले श्रीलालजी और दूसरी ओर थे
नी, माता, भाई, ये तीन दुर्जेय महारथी। उनका भविष्य
सी युद्ध पर निर्भर था।

यह संघर्ष पत्नी की ही ओर से प्रारम्भ हुआ। मानकुंवर बाई
ाने के बाद टोंक आ गई थीं। उनके विनय, शील, आदि उत्तम
णों तथा कर्तव्यपरायणता ने समस्त परिजनों का मन मोह
लया था। सभी उनकी प्रशंसा करते थे परन्तु अपने पति की
राग्यवृत्ति से उन्हें अत्यन्त वेदना होती थी। पर आते ही सासने
केवल "प्रत्यक्ष वशीकरण है" का गुरु मंत्र उन्हें सिखा दिया था।
पति को प्रसन्न करने का भरसक प्रयत्न करतीं, कोमल युद्ध
उन्हें पराजित करने का उद्योग करतीं, पर श्रीलालजी भी
के पीछा न थे। वे एकान्त हवेली में सोते, कचित् ही वार्तालाप
रते और अधिकांश समय पठन-लेखन या धर्मानुष्ठान में ही लगाते
। एक दिन श्रीलालजी हवेली की चांदनी के एकान्त स्थल में ध्यान-
स्थ बैठे थे। इसी समय मानकुंवर बाई तीन बालों से अपनी ओर
निर्निमेषदृष्टि से देखने की साधना करने लगीं। परन्तु श्रीलालजी
ने नेत्र नीचे करके मौन धारण कर लिया। युवती का सौन्दर्य

र। भाइयों ने लौट चलने का आग्रह किया पर उन्होंने दृढ़ता-पूर्वक अस्वीकार कर दिया।

टोंक से रवाना होते समय, सहर्ष न लौटने पर दोनों को पकड़ लाने के लिए राजाज्ञा निकलवा ली गई थी। नाथूलालजी ने उसी का आश्रय लिया। सूबेदार ने भी लौटने को समझाया और राजाज्ञा की धमकी दी। लेकिन श्रीलालजी उसके सामने पैर जमा कर खड़े हो गये और मेघ की तरह गंभीर गर्जन करते हुए बोले— "टोंक भेजना तो दूर रहा, मुझे इस स्थान से भी हटाना दुष्कर है।" सूबेदार पर इन शब्दों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। वे टोंक न गये। इसी दिन विकट युद्ध में आपकी विजय हुई। परिजनों की आज्ञा मिल गई और आप सं० १९४५ की माघ कृष्णा ७ के दिन दीक्षित हुए।

दीक्षा लेने के पश्चात् श्री जी ने अपने समस्त सद्गुण, उत्साह और शक्तियाँ स्व-पर कल्याण में लगा दिये। शनैः शनैः ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की खूब वृद्धि हो गयी। उदार विचार, धैर्य, शान्ति, क्षमा, मनोनिग्रह, जितेन्द्रियता, न्यायप्रियता, वाक्-पटुता, विनय, वैराग्य आदि गुणों का शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति वृद्धि हो रही थी। अतः आप आचार्य स्थानासीन किये गये। आचार्य पद प्राप्त करके उन्हें ज़रा भी अभिमान न हुआ। साधारण साधुओं की भाँति आपमें शिष्य-समुदाय बढ़ाने का ध्यान न था। उनका मधुर और सुश्राव्य उपदेश सुनने के लिए सभी लोग श्रद्धा पूर्वक आते थे। अपने सदुपदेश से उन्होंने कई स्थानों पर बलिदान बंद करवाये, सर्हाकों से हिंसा की नीच वृत्ति छुड़वाई, कितने ही पारम्परिक मांसाहारियों से मांसभक्षण

मातृभूमि के अंगोपांग हैं और हमारे लिए मननीय हैं। उस मातृभूमि की उदार अंक में कमनीय किलोलें करने वाला प्रत्येक पुरुष परस्पर में सहोदर बन्धु है। ऐसे देशवासियों में पारस्परिक प्रेम होना अनिवार्य और प्राकृतिक है, क्योंकि जिस देश के जल-वायु से जिन शरीरों का पालन-पोषण होता है, उनमें एक ही जाति के रक्त का संचार होता है। रूप-रंग और स्वभाव में भी भेद की अधिकता नहीं पाई जाती।

जिस प्रकार सगे भाई एक ही रक्त के कारण प्रेम-बन्धन में बँधे होते हैं, उसी प्रकार मातृभूमि की अपार स्नेहमयी गोदी में, धूलिधूसर होते हुए उसका अमृतमय पय-पान करके लालित-पालित पुत्रों में कौन कहता है प्रेम न होगा?

हम अपने शरीर की हिफाजत रखते हैं, उसे नीरोग बनाये रखने के लिए मकान की स्वच्छता की ओर लक्ष्य देते हैं, मकान में वायुविकारक वस्तुएँ नहीं रहने देते। हमारा कर्त्तव्य हमें बतलाता है कि इसी भाँति कुरीतियों और आपदाओं की विषैली वायु को देश में न उत्पन्न होने दो, जो चालू हों उनका अस्तित्व न रहने दो, क्योंकि देश भी हमारे मकान का एक विस्तृत रूप है। देश में स्वास्थ्य-सत्यानाशिनी हवा फैलने से हमारे देशबन्धुओं को अतीव हानि उठानी पड़ेगी। हम भी अछूते नहीं रह सकेंगे। जैसे प्लेग के कीटाणु शीघ्र ही सर्वत्र फैल जाते हैं, उसी प्रकार समाज और देश में प्रचलित प्रत्येक रीति या विपत्ति शीघ्र संक्रामक रूप धारण कर लेती है। कुछ दिन बाद उसका प्रतिकार करना लगभग असंभव हो जाता है। अतएव प्रत्येक देशवासी को अपने देशरूपी घर को स्वच्छ रखने, अन्त्यजन्य एवं स्वयं-

का त्याग करवाया। आप बड़े ही अवसरकुशल थे। आपकी शक्ति अतीव तीव्र थी। वे मानवस्वभाव को अनायास ही लेते थे। उनके नेत्रों में विचित्र आकर्षण शक्ति थी।

सं० १९७७ की आषाढ़ शुक्ला ३ को ... शरीर का त्याग किया। साधुमार्गी सम्प्रदाय का एक रत्न गया। पूज्य (आचार्य) श्रीलालजी महाराज के जीवन का मंत्र है दृढ़ता। दृढ़ता के बिना अन्य गुण फीके रह जाते हैं। अपने जीवननिर्माण में दृढ़ता की अनिवार्य आवश्यकता है।

पाठ सत्तरहवाँ

देश सेवा।

अङ्क- गोद। यामना- काजल, अञ्जन। यामिनी- रात्रि। ... निरोध, रुकावट। क्लशोषक- शक्ति का नाश करने वाली। उत्सुक ... उत्साह। इतिवृत्त- इतिहास। दीमटाम- बनावट, ऊपरी सजावट। ... नगरी। नेह (स्नेह) प्रेम।

पृथ्वी के ऐसे भाग को, जो इस प्रकार सीमाबद्ध हो जहाँ के निवासियों का अन्य भाग वालों से सहअहीं सम्ब हो सके और इसलिए प्रायः एक ही प्रकार की भाषा, रीति र प्रचलित हो, देश कहते हैं। एक स्वदेशभक्त ने क्या ही भाव प्रदर्शित किया है— मेरी दृष्टि में देश के नदी, पर्वत ग्राम केवल जल और पृथ्वी का संयोग नहीं है वरन् एक मह

मातृभूमि के अंगोपांग हैं और हमारे लिए मननीय हैं। उस मातृभूमि की उदार अंक में कमनीय किलोलें करने वाला प्रत्येक पुरुष परस्पर में सहोदर बन्धु है। ऐसे देशवासियों में पारस्परिक प्रेम होना अनिवार्य और प्राकृतिक है, क्योंकि जिस देश के जल-वायु ने जिन शरीरों का पालन-पोषण होता है, उनमें एक ही जाति के रक्त का सञ्चार होता है। रूप-रंग और स्वभाव में भी भेद की अधिकता नहीं पाई जाती।

जिस प्रकार सगे भाई एक ही रक्त के कारण प्रेम-बन्धन में बँधे होते हैं, उसी प्रकार मातृभूमि की अपार स्नेहमयी गोदी में, धूलिधूसर होते हुए उसका अमृतमय पय-पान करके लालित-पालित पुत्रों में कौन कहता है प्रेम न होगा?

हम अपने शरीर की हिफ़ाज़त रखते हैं, उसे नीरोग बनाये रखने के लिए मकान की स्वच्छता की ओर लक्ष्य देते हैं, मकान में वायुविकारक वस्तुएं नहीं रहने देते। हमारा कर्त्तव्य हमें बतलाता है कि इसी भांति कुरीतियों और आपदाओं की विषैली वायु को देश में न उत्पन्न होने दो, जो चालू हों उनका अस्तित्व न रहने दो, क्योंकि देश भी हमारे मकान का एक विस्तृत रूप है। देश में स्वास्थ्य-सत्यानाशिनी हवा फैलने से हमारे देशबन्धुओं को अतीव हानि उठानी पड़ेगी। हम भी छूटने नहीं रह सकेंगे। जैसे प्लेग के कीटाणु शीघ्र ही सर्वत्र फैल जाते हैं, उसी प्रकार समाज और देश में प्रचलित प्रत्येक रीति या विपत्ति शीघ्र संक्रामक रूप धारण कर लेती है। कुछ दिन बाद उसका प्रतिकार करना लगभग असंभव हो जाता है। अतएव प्रत्येक देशवासी को अपने देशरूपी घर को स्वच्छ रखने, अन्यजन्य एवं स्वयं-

मातृभूमि के अंगोपांग हैं और हमारे लिए माननीय हैं। उस मातृभूमि की उदार अंक में कमनीय किलोलें करने वाला प्रत्येक पुरुष परस्पर में सहोदर बन्धु है। ऐसे देशवासियों में पारस्परिक प्रेम होना अनिवार्य और प्राकृतिक है, क्योंकि जिस देश के जल-वायु ने जिन शरीरों का पालन-पोषण होता है, उनमें एक ही जाति के रक्त का संचार होता है। रूप-रंग और स्वभाव में भी भेद की अधिकता नहीं पाई जाती।

जिस प्रकार सगे भाई एक ही रक्त के कारण प्रेम-बन्धन में बँधे होते हैं, उसी प्रकार मातृभूमि की अपार स्नेहमयी गोदी में, धूलिधूसर होते हुए उसका अमृतमय पय-पान करके लालित-पालित पुत्रों में कौन कहता है प्रेम न होगा?

हम अपने शरीर की हिफाजत रखते हैं, उसे नीरोग बनाये रखने के लिए मकान की स्वच्छता की ओर लक्ष्य देते हैं, मकान में वायुविकारक वस्तुएँ नहीं रहने देते। हमारा कर्त्तव्य हमें बतलाता है कि इसी भाँति कुरीतियों और आपदाओं की विषैली वायु को देश में न उत्पन्न होने दो, जो चालू हों उनका अस्तित्व न रहने दो, क्योंकि देश भी हमारे मकान का एक विस्तृत रूप है। देश में स्वास्थ्य-सत्यानाशिनी हवा फैलने से हमारे देशबन्धुओं को प्रतीव हानि उठानी पड़ेगी। हम भी अछूते नहीं रह सकेंगे। जैसे प्लेग के कीटाणु शीघ्र ही सर्वत्र फैल जाते हैं, उसी प्रकार समाज और देश में प्रचलित प्रत्येक रीति या विपत्ति शीघ्र संक्रामक रूप धारण कर लेती है। कुछ दिन बाद उसका प्रतिकार करना लगभग असंभव हो जाता है। अतएव प्रत्येक देशवासी को अपने देशरूपी घर को स्वच्छ रखने, अन्यजन्य एवं स्वयं-

मातृभूमि के अंगोपांग हैं और हमारे लिए सम्माननीय हैं। उस मातृभूमि की उदार गोद में स्वच्छन्द किलोलें करने वाला प्रत्येक पुरुष परस्पर में सहोदर बन्धु है। ऐसे देशवासियों में पारस्परिक प्रेम होना अनिवार्य और प्राकृतिक है, क्योंकि जिस देश के जल-वायु से जिन शरीरों का पालन-पोषण होता है, उनमें एक ही जाति के रक्त का संचार होता है। रूप-रंग और स्वभाव में भी भेद की अधिकता नहीं पाई जाती।

जिस प्रकार सगे भाई एक ही रक्त के कारण प्रेम-बन्धन में बंधे होते हैं, उसी प्रकार मातृभूमि की अपार स्नेहमयी गोदी में, धूलिधूसर होते हुए उसका अमृतमय पय-पान करके लालित-पालित पुत्रों में कौन कहता है प्रेम न होगा ?

हम अपने शरीर को हिफाजत रखते हैं, उसे नीरोग बनाये रखने के लिए मकान की स्वच्छता की ओर लक्ष्य देते हैं, मकान में वायुविकारक वस्तुएं नहीं रहने देते। हमारा कर्तव्य हमें बतलाता है कि इसी भांति कुरीतियों और आपदाओं की विषैली वायु को देश में न उत्पन्न होने दें, जो वायु हो उसका अस्तित्व न रहने दें, क्योंकि देश भी हमारे मकान का एक विस्तृत रूप है। देश में स्वास्थ्य-सम्पत्तिनाशिनी हवा फैलने से हमारे देशबन्धुओं को अनेक हानि उठानी पड़ेगी। हम भी अछूते नहीं रह सकेंगे। जैसे प्लेग के कीटाणु शीघ्र ही सर्वत्र फैल जाते हैं, उसी प्रकार समाज और देश में प्रचलित प्रत्येक रीति या विपत्ति शीघ्र संक्रामक रूप धारण कर लेती है। कुछ दिन बाद उसका प्रतिकार करना लगभग असंभव हो जाता है। अतएव प्रत्येक देशवासी का अपने देशरूपी घर को स्वच्छ रखने, अन्यजन्य एवं स्वयं-

पास धन है वे अपनी प्यारी मातृभूमि के मंगल के अर्थ, उसे पददलित करने वाले बाह्याभ्यन्तर रिपुओं का प्रतिकार करने के लिए अर्पण कर सकते हैं। निर्धनों को व्यापार-धन्धे में लगाकर उनकी आर्थिक दुरवस्था दूर कर सकते हैं। पाठशालाएँ स्थापित कर या उनकी सहायता करके शिक्षा की ज्योति जगा सकते हैं। जिनसे वृथा ही व्यय होता है उन समाजशोषक रीतियों का समूल उन्मूलन करने में हाथ बँटा सकते हैं। इत्यादि अनेक ढंगों से उनके धन से देशोन्नति के बीज बोये जा सकते हैं। इससे देश में ऐसे अनेक विशाल वृक्ष उत्पन्न होंगे कि उनकी शीतल छाया में देशवासी आनन्द पूर्वक रहेंगे और उनके अमृतमय फलों का रसास्वादन कर जीवन को सुखमय बनायेंगे। मेवाड़ के महामंत्री श्री भामाशाह का पवित्र चरित्र अवश्य पढ़ चुके हो। उन्होंने अपना सर्वस्व मातृभूमि के उद्धार और प्रिय चरणों पर अर्पण किया था। वे इसीसे इतिवृत्त-जगत् में अब तक जीवित हैं और सदा जीवित रहेंगे।

बालको! तुम यह सोचते होओगे कि हम किस प्रकार देश-सेवा कर सकते हैं? हम कहते हैं तुम कितने ही प्रकारों से सेवा कर सकते हो। खूब परिश्रम करके पढ़ो। तुम विद्वान बन जाओगे तो देश का अज्ञान कम होगा, फिर दूसरों को पढ़ाओगे तो अशिक्षा का सर्वथा अभाव हो जायगा। तुम सादा जीवन बिताओ। टीमटाम की लपेट में मत पड़ो। तुम अपनी इस सादगी से ही न जाने कितनों का जीवन सुधार कर सकोगे। सदा ध्यान रखो कि देश का भावी उत्कर्ष तुम पर निर्भर है। तुम्हारा सारा पठन, मनन, खान-पान, सब कुछ देशसेवा के लिए [illegible]

समुत्पादित आक्रमणों से बचाने, और उसके प्रत्येक भाग सुदृढ़ तथा उपयोगी बनाने, का यत्न करना परमावश्यक है इन्हीं आवश्यकताओं को पूर्ण करना देश-सेवा है । जब दुर्दशाग्रस्त हो गया हो, देशबन्धुओं का अधिकांश जीवन बिताता हो, अज्ञान-यामना की एकान्त कालिमा-यामिनी में पथ भ्रष्ट हो होकर खाता-फिरता हो, तब जिन्हें योग से विद्या-बुद्धि या धन प्राप्त हुआ है उन्हें विशेष रूप से अर्पण कर देना चाहिए ।

जो देश सेवा में तत्पर नहीं, देश की दुर्दशा को फूटी आँख नहीं देखते, यहाँ तक कि स्वजातियों का उत्कर्ष देख मान प्रगट करते हैं और हृदय, मस्तिष्क, उदारता एवं नेत्रों को ही तक सीमित रखते हैं वे मनुष्याकारधारी होने पर भी मनु नहीं हैं । उनमें मानवोचित विशिष्ट मनन करने की शक्ति कर्त्तव्यविवेक की कुछ विशेषता नहीं है ।

प्रत्येक वस्तु को देशसेवा का साधन बनाया जा सकता है मनुष्य के पास मुख्य शक्तियाँ तीन हैं— विद्या, बल, धन किसी के पास तीनों शक्तियाँ होती हैं, किसी के पास दो किसी के पास एक होती है । जिसके पास जो शक्ति हो वही शक्ति देशसेवा में लगा देनी चाहिए ।

विद्या द्वारा देशसेवा वे लोग कर सकते हैं, जो विद्वान् विद्वान् अपने ज्ञान से देश का अज्ञानान्धकार दूर कर सकते हैं, वक्तृत्व शक्ति से हानिकारक रीति-रिवाजों को नाश सकते हैं। दुर्बल पर कोई अत्याचार करे, उसे सताये तो बल का कर्त्तव्य है कि उसे उस अत्याचारी के पंजे से छुड़ाये। इस प्रकार की देशसेवा शारीरिक बल से की जा सकती है। जि

पास धन है वे अपनी प्यारी मातृभूमि के मंगल के अर्थ, उसे पददलित करने वाले आक्रमणकारी रिपुओं का प्रतिकार करने के लिए अर्पण कर सकते हैं। निर्धनों को रोजगार-धन्धे में लगाकर उनकी आर्थिक दुरवस्था दूर कर सकते हैं। पाठशालायें स्थापित कर या उनकी सहायता करके शिक्षा की ज्योति जगा सकते हैं। जिनमें द्रव्य ही व्यय होता है उन हानिकारक रीतियों का समूल उन्मूलन करने में हाथ बँटा सकते हैं। इत्यादि अनेक ढंगों से अपने धन से देशोन्नति के बीज बोये जा सकते हैं। इससे देश में ऐसे अनेक विशाल वृक्ष उत्पन्न होंगे कि उनकी शीतल छाया में देशवासी आनन्द पूर्वक रहेंगे और उनके अमृतमय फलों का रसास्वादन कर जीवन को सुखपूर्ण बनावेंगे। मेवाड़ के महामंत्री श्री भामाशाह का पवित्र चरित्र अवश्य पढ़ चुके हो। उन्होंने अपना सर्वस्व मातृभूमि के उद्धार और प्रिय चरणों पर अर्पण किया था। वे इसीसे इतिहास-जगत् में अब तक जीवित हैं और सदा जीवित रहेंगे।

बालको! तुम यह सोचते होओगे कि हम किस प्रकार देश-सेवा कर सकते हैं? हम कहते हैं तुम कितने ही प्रकारों से सेवा कर सकते हो। खूब परिश्रम करके पढ़ो। तुम विद्वान बन जाओगे तो देश का अज्ञान कम होगा, फिर दूसरों को पढ़ाओगे तो अशिक्षा का सर्वथा अभाव हो जायगा। तुम सादा जीवन बिताओ। टीमटाम की सजावट में मत पड़ो। तुम्हारी इस सच्ची सादगी से ही न जाने कितनों का जीवन सुधर सकता है। सदा ख्याल रखो कि देश का भावी उत्कर्ष तुम पर निर्भर है। [illegible] धन, मनन, खान-पान, सब कुछ देशसेवा के लिए हो। [illegible]

जागो। जागने वालो, खड़े हो जाओ। खड़े होने वालो, अपने कर्तव्य में जुट जाओ।

(४)

हमीं क्यों चुप खड़े रहें? समस्त भूमण्डल प्रगति के पथ में सपाटा मार रहा है। सारी सृष्टि, नक्षत्रादि सभी, अपने-अपने कर्तव्य कर रहे हैं। सब चैतन्य हो गये हैं। फिर हमीं क्यों बेकार रहें? संसार में मनुष्यों के सिवाय और कोई आलसी नहीं। फिर क्यों हम मनुष्य कहलाते हैं?।

पाठ उन्नीसवाँ

मनुष्य भाषा भाषी कुत्ता

व्यञ्जक– प्रगट करने वाला। बेधड़क—बेखटका; निर्भय। रिकार्ड- फोनोग्राफ की चूड़ी। परिष्कृत- शुद्ध, संस्कार किया हुआ। पर्याय– पुद्गल के परमाणुओं का एक प्रकार का समुदाय।

कुछ दिन पहले जर्मनी देश में एक ऐसे अद्भुत कुत्ते का पता चला था जो विशेष शिक्षा पाये बिना ही मनुष्यों की तरह कुछ शब्दों में बातचीत कर सकता था। उसकी भाव-व्यञ्जक भाषा केवल तोतारटन्त नहीं किन्तु स्वाभाविक मानसिक विकास का परिणाम है। उस विचित्र कुत्ते ने वैज्ञानिक संसार में हलचल सी मचा दी है। उसका नाम था 'डान'।

डान ने शैशवावस्था में ही अपनी असाधारण बुद्धिमत्ता का परिचय दिया था। उसके शैशव काल की बहुत सी आश्चर्य

डान सदैव वार्तालाप नहीं किया करता था। आवश्यकता पड़ने पर या जब उसका जी चाहता तभी बोलता था। भरसक के समय उसे चुपचाप पड़ा रहना पसन्द आता था। अधिक बातचीत करने से वह थक जाता था। कारण यह कि मनुष्य में मानसिक व्यापार अल्प होती है और पशुओं में मानसिक शक्ति कम होती है। इसीलिए थोड़ा सा मानसिक परिश्रम करने से वह थक जाता था।

डान बड़ा सुन्दर था। उसकी आँखें प्रतिभासम्पन्न थीं। उसकी आँखों में मानवीय भाव साफ झलकता था और उसकी गति तथा आचरण इस बात को अच्छी तरह प्रकट करते थे कि वह विकास की दृष्टि से मनुष्यों और कुत्तों का मध्यवर्ती जीव था।

व्याख्यान के अन्त में डाक्टर वूसजर ने अपनी बातों के प्रमाणित करने के लिए सभा में डान की परीक्षा ली। पहले कुत्ते से पूछा गया—" तुम्हारा क्या नाम है ? " उसने बड़े गम्भीर स्वर में उत्तर दिया— " डान। " इसके बाद परिचित जर्मन भाषा में डाक्टर वूसजर और डान के बीच निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए—

वूस० — " तुम्हें कैसा जान पड़ता है ? "

डान — " भूख लगी है। "

वूस० — " क्या तुम कुछ खाना चाहते हो ? "

डान — " हां, चाहता हूं। "

डाक्टर साहब ने उसे रोटी दिखलाकर पूछा— " [illegible] है ? " उसने उत्तर दिया— " रोटी। " इस प्रकार के अनेक

डान सदैव बातचीत नहीं किया करता था। पढ़ने पर या जब उसका जी चाहता तभी बोलता था। के समय उसे चुपचाप पड़ा रहना पसन्द आता था। बातचीत करने से वह थक जाता था। कारण वह कि मानसिक व्यापार जन्य होती है और पशुओं में मानसिक कम होती है। इसीलिए थोड़ा सा मानसिक परिश्रम करके वह थक जाता था।

डान बड़ा सुन्दर था। उसकी आँखें प्रतिभासम्पन्न थीं उसकी आँखों से मानवीय भाव साफ़ ... और गति तथा आचरण इस बात को अच्छी तरह ... वह विकास की दृष्टि से मनुष्यों और कुत्तों का मध्यवर्ती जीव

व्याख्यान के अन्त में डाक्टर वूसजर ने अपनी बातों प्रमाणित करने के लिए सभा में डान की परीक्षा ली। कुत्ते से पूछा गया— "तुम्हारा क्या नाम है?" उसने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया— "डान।" इसके बाद जर्मन भाषा में डाक्टर वूसजर और डान के बीच निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए—

वूस० — "तुम्हें कैसा जान पड़ता है?"

डान — "भूख लगी है।"

वूस० — "क्या तुम कुछ खाना चाहते हो?"

डान — "हाँ, चाहता हूँ।"

डाक्टर साहब ने उसे रोटी दिखलाकर पूछा— "यह क्या है?" उसने उत्तर दिया— "रोटी।" इस प्रकार के

मैंने पिछले दस वर्षों में ही ढंग के साथ घूमना सीखा है। चाल में एक प्रकार की सरलता होनी चाहिए, गति में एक नियमित प्रवाह होना चाहिए और शरीर इस तरह से रखना चाहिए कि वह बिना किसी विशेष परिश्रम के उठने वाले कदमों के साथ आगे को बढ़ता जावे।

प्रतिकूल परिस्थिति में भी यदि आप तेज़ी के साथ २-४ मील रोज घूम लें, तो उससे लाभ ही होगा पर यदि आप तीन चार मील घूमें तब तो बात ही क्या है। वास्तव में शरीर में इससे जितनी फुर्ती आयेगी, उतनी दूसरे किसी तरीके से आ ही नहीं सकती। पेट, हृदय और फेफड़ों पर, जो जीवन के मुख्य अंग हैं, घूमने का बड़ा अच्छा असर पड़ता है। शरीर के रक्त-प्रवाहक अंगों में स्वास्थ्यप्रद गति पैदा हो जाती है, खून साफ़ हो जाता है, आंखों की ज्योति बढ़ जाती है, रंग रूप भी निखर जाता है, मांस में भी कुछ मज़बूती आ जाती है और शरीर के अङ्ग-अङ्ग में शक्ति तथा दृढ़ता का सञ्चार होने लगता है।

ऐसी भी घटनायें हमने सुनी हैं कि क्षय तथा भयंकर बीमारियों के मरीज़ घूमने की वजह से स्वस्थ हो गये। जो लोग खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के इच्छुक हों, अथवा जो किसी पुराने महारोग से पीड़ित हों, उनके लिए घूमने से बढ़िया दूसरी कोई कसरत नहीं हो सकती। हां, साथ ही उनको गहरी सांस लेने का भी अभ्यास करना चाहिए। घूमना भयंकर बीमारियों में इसलिए और भी अधिक लाभदायक है कि इस व्यायाम की अति नहीं हो सकती। अपनी शक्ति से बाहर इस व्यायाम को करना कठिन है। घूमते-घूमते थक कर

पाठ बीसवाँ

टहलना

रफ्तार– चाल, वेग। साम्य– समानता, सुडौलता।

यदि आप अपनी तन्दुरस्ती ठीक रखना चाहते हैं या हु[illegible] हुए स्वास्थ्य को वापिस लाना चाहते हैं, तो घूमना शुरू [illegible] दीजिए। चाहे दूसरे व्यायाम आप भले ही छोड़ दें पर [illegible] व्यायाम—टहलने- को आप कभी न छोड़िये। आप अपने [illegible] विशेषों के विकास के लिए चाहे जो दूसरी कसरतें करें [illegible] पर दिन में दो घण्टे घूमने का नियम जरूर रखिये। मैं [illegible] बात को मानता हूँ कि ऐसे बहुत से व्यायाम हैं, जो स्वास्[illegible] लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, पर घूमने की बात ही निराली [illegible] मैं तो यह कहूँगा कि जो आदमी— स्त्री या पुरुष- चौबीस [illegible] में कम से कम दो घण्टे नहीं घूमता, वह पूर्ण स्वस्थ हो [illegible] सकता, चाहे वह दूसरे कितने ही व्यायाम करता रहे।

घूमने का भी तरीका है। अगर आप बेढंगे तौर पर भी [illegible] तो भी उससे कुछ न कुछ शक्ति तो जरूर बढ़ेगी, पर ढीले [illegible] तरीके से घूमने से आप जल्दी थक जायगे और वह लाभ [illegible] नहीं उठा सकेंगे, जो नियमित रूप से घूमने से होता है। [illegible] लोग पैदल चला करते हैं, उनमें से प्रत्येक ढंग के साथ [illegible] नहीं जानता। घूमते समय गति में साम्य होना चाहिए [illegible] शरीर को एक खास तौर से रखना चाहिए, तभी शरीर में [illegible] बढ़ सकती है।

मैंने पिछले दस वर्षों में ही ढंग के साथ घूमना सीखा है । चाल में एक प्रकार की सरलता होनी चाहिए, गति में एक नियमित प्रवाह होना चाहिए और शरीर इस तरह से रखना चाहिए कि वह बिना किसी विशेष परिश्रम के उठने वाले कदमों के साथ आगे को बढ़ता जाये ।

प्रतिकूल परिस्थिति में भी यदि आप तेज़ी के साथ २-४ मील घूम लें तो उससे लाभ ही होगा पर यदि आप तीन चार घंटे घूमें तब तो बात ही क्या है । क्योंकि शरीर में इससे जितनी फुर्ती आयेगी, उतनी दूसरे किसी तरह से आ ही नहीं सकती । पेट, हृदय और फेफड़ों पर, जो जीवन के मुख्य अंग हैं, घूमने का बड़ा अच्छा असर पड़ता है । शरीर के रक्त-प्रवाहक अङ्गों में स्वास्थ्यप्रद गति पैदा हो जाती है, खून साफ हो जाता है, आंखों की ज्योति बढ़ जाती है, रंग रूप भी निखर आता है, काम में भी कुछ मज़बूती आ जाती है और शरीर के अङ्ग-अङ्ग में शक्ति तथा दृढ़ता का सञ्चार होने लगता है ।

ऐसी भी घटनाएं हमने सुनी हैं कि लोग तथा भयंकर बीमारियों के मरीज़ घूमने की वजह से स्वस्थ हो गये । जो लोग खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के इच्छुक हों, अथवा जो किसी पुराने महारोग से पीड़ित हों, उनके लिए घूमने से बढ़िया दूसरी कोई कसरत नहीं हो सकती । हां, साथ ही उनको गहरी सांस लेने का भी अभ्यास करना चाहिए । घूमना भयंकर बीमारियों में इसलिए और भी अधिक लाभदायक है कि इस व्यायाम की अति नहीं हो सकती । अपनी शक्ति से बाहर इस व्यायाम को करना कठिन है । घूमते-घूमते थक कर

पाठ बीसवाँ

टहलना

रफ्तार- चाल, वेग। साम्य- समानता, सुडौलता।

यदि आप अपनी तन्दुरुस्ती ठीक रखना चाहते हैं या खो
हुए स्वास्थ्य को वापिस लाना चाहते हैं, तो घूमना शुरू क
दीजिए। चाहे दूसरे व्यायाम आप भले ही छोड़ दें पर इ
व्यायाम—टहलने- को आप कभी न छोड़िये। आप अपने अ
विशेषों के विकास के लिए चाहे जो दूसरी कसरतें करते र
पर दिन में दो घण्टे घूमने का नियम जरूर रखिये। मैं इ
बात को मानता हूं कि ऐसे बहुत से व्यायाम हैं, जो स्वास्थ्य
लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, पर घूमने की बात ही निराली है
मैं तो यह कहूँगा कि जो आदमी—स्त्री या पुरुष- चौबीस घ
में कम से कम दो घण्टे नहीं घूमता, वह पूर्ण स्वस्थ हो न
सकता, चाहे वह दूसरे कितने ही व्यायाम करता रहे।

घूमने का भी तरीका है। अगर आप बेढंगे तौर पर भी घूमें
तो भी उससे कुछ न कुछ शक्ति तो जरूर बढ़ेगी, पर ढीले ढ
तरीके से घूमने से आप जल्दी थक जायगे और वह लाभ
नहीं उठा सकेंगे, जो नियमित रूप से घूमने से होता है।
लोग पैदल चला करते हैं, उनमें से प्रत्येक ढंग के साथ घूम
नहीं जानता। घूमते समय गति में साम्य होना चाहिए अ
शरीर को एक खास तौर से रखना चाहिए, तभी शरीर में स्फू
बढ़ सकती है।

मैंने पिछले दस वर्षों में ही ढग के साथ घूमना सीखा है। चाल में एक प्रकार की सरलता होनी चाहिए, गति में एक नियमित प्रवाह होना चाहिए और शरीर इस तरह से रखना चाहिए कि वह बिना किसी विशेष परिश्रम के उठने वाले कदमों के साथ आगे को बढ़ता जावे।

प्रतिकूल परिस्थिति में भी यदि आप तेजी के साथ ३-४ मील घूम लें: तो उससे लाभ ही होगा पर यदि आप तीन चार घंटे घूमें तब तो बात ही क्या है। आपके शरीर में इससे जितनी फुर्ती आवेगी, उतनी दूसरे किसी तरीके से आ ही नहीं सकती। पेट, हृदय और फेफड़ों पर, जो जीवन के मुख्य अंग हैं, घूमने का बड़ा अच्छा असर पड़ता है। शरीर के रक्त-प्रवाहक अङ्गों में स्वास्थ्यप्रद गति पैदा हो जाती है, खून साफ हो जाता है, आंखों की ज्योति बढ़ जाती है, रंग-रूप भी निखर जाता है, मांस में भी कुछ मज़बूती आ जाती है और शरीर के अङ्ग-अङ्ग में शक्ति तथा दृढ़ता का सञ्चार होने लगता है।

ऐसी भी घटनाएं हमने सुनी हैं कि क्षय तथा भयंकर बीमारियों के मरीज घूमने की वजह से स्वस्थ हो गये। जो लोग खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के इच्छुक हों, अथवा जो किसी पुराने महारोग से पीड़ित हों, उनके लिए घूमने से बढ़िया दूसरी कोई कसरत नहीं हो सकती। हां, साथ ही उनको गहरी सांस लेने का भी अभ्यास करना चाहिए। घूमना भयंकर बीमारियों में इसलिए और भी अधिक लाभदायक है कि इस व्यायाम की अति नहीं हो सकती। अपनी शक्ति से बाहर इस व्यायाम का करना कठिन है। घूमते-घूमते थक कर

पाठ बीसवाँ

टहलना

रफ्तार— चाल, वेग। साम्य— समानता, सुडौलता।

यदि आप अपनी तन्दुरुस्ती ठीक रखना चाहते हैं या खोये हुए स्वास्थ्य को वापिस लाना चाहते हैं, तो घूमना शुरू कर दीजिए। चाहे दूसरे व्यायाम आप भले ही छोड़ दें पर इस व्यायाम—टहलने—को आप कभी न छोड़िये। आप अपने अङ्ग विशेषों के विकास के लिए चाहे जो दूसरी कसरतें करते हों, पर दिन में दो घण्टे घूमने का नियम ज़रूर रखिये। मैं इस बात को मानता हूं कि ऐसे बहुत से व्यायाम हैं, जो स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, पर घूमने की बात ही निराली है। मैं तो यह कहूँगा कि जो आदमी—स्त्री या पुरुष—चौबीस घण्टे में कम से कम दो घण्टे नहीं घूमता, वह पूर्ण स्वस्थ हो नहीं सकता, चाहे वह दूसरे कितने ही व्यायाम करता रहे।

घूमने का भी तरीका है। अगर आप बेढंगे तौर पर भी घूमेंगे तो भी उससे कुछ न कुछ शक्ति तो ज़रूर बढ़ेगी, पर ढीले ढाले तरीके से घूमने से आप जल्दी थक जायेंगे और वह लाभ भी नहीं उठा सकेंगे, जो नियमित रूप से घूमने से होता है। जो लोग पैदल चला करते हैं, उनमें से प्रत्येक ढंग के साथ घूमना नहीं जानता। घूमते समय गति में साम्य होना चाहिए और शरीर को एक खास तौर से रखना चाहिए तभी शरीर में स्फूर्ति बढ़ सकती है।

मैंने पिछले दस वर्षों में ही इन के साथ घूमना सीखा है। चाल में एक प्रकार की सरलता होनी चाहिए, गति में एक नियमित प्रवाह होना चाहिए और शरीर इस तरह से चलना चाहिए कि वह बिना किसी विशेष परिश्रम के उठने वाले कदमों के साथ आगे को बढ़ता जाये।

प्रतिकूल परिस्थिति में भी यदि आप तेज़ी के साथ २-४ मील घूम लें तो उससे लाभ ही होगा पर यदि आप तीन चार घंटे घूमें तब तो बात ही क्या है। आपके शरीर में इससे जितनी फुर्ती आयेगी, उतनी दूसरे किसी तरीके से आ ही नहीं सकती। पेट, हृदय और फेफड़ों पर, जो जीवन के मुख्य अंग हैं, घूमने का बड़ा अच्छा असर पड़ता है। शरीर के रक्त-प्रवाहक अङ्गों में स्वास्थ्यप्रद गति पैदा हो जाती है, खून साफ हो जाता है, आंखों की ज्योति बढ़ जाती है, रंग रूप भी निखर आता है, मांस में भी कुछ मज़बूती आ जाती है और शरीर के अङ्ग-अङ्ग में शक्ति तथा दृढ़ता का सञ्चार होने लगता है।

ऐसी भी घटनाएं हमने सुनी हैं कि क्षय तथा भयंकर बीमारियों के मरीज़ घूमने की वजह से स्वस्थ हो गये। जो लोग खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के इच्छुक हों, अथवा जो किसी पुराने महारोग से पीड़ित हों, उनके लिए घूमने से बढ़िया दूसरी कोई कसरत नहीं हो सकती। हां, साथ ही उनको गहरी सांस लेने का भी अभ्यास करना चाहिए। घूमना भयंकर बीमारियों में इसलिए और भी अधिक लाभदायक है कि इस व्यायाम की अति नहीं हो सकती। अपनी शक्ति से बाहर इस व्यायाम को करना कठिन है। घूमते-घूमते थक कर

रखने के लिए आप इस बात की कोशिश कीजिए कि आपका प्रत्येक कदम उस कदम से बड़ा हो, जिससे चलने के लिए आप मामूली तौर पर आदी हैं।

यह बेशक सच है कि ज्यादःतर लोग चलते समय घबराये से रहते हैं, उनका कदम झटके के साथ पड़ता है और उसमें सादग नहीं होता। अगर वे लम्बे कदम रखने की कोशिश करें, तो थोड़े समय में कम परिश्रम से ज्यादः दूर जा सकेंगे, और फल यह होगा कि उन्हें जो थकावट होगी, वह उस थकावट से कहीं ज्यादः स्वाभाविक होगी, जो छोटे कदम रखने में होती है।

घूमने का परिमाण बहुत कुछ शारीरिक शक्ति, देश तथा काल पर अवलम्बित है। शिमला, दार्जिलिंग, नैनीताल, मसूरी, श्रीनगर, नासीराबाद, नन्दीगिरि, आबू (पर्वत) प्रभृति शीतप्रधान प्रदेशों में अधिक घूम बिना चित्त स्वयं बेचैन रहता है। ऐसे प्रदेशों में अधिक घूमना अत्यन्त लाभदायक है। उष्ण प्रदेशों में अधिक घूमने को जी नहीं चाहता, तो भी प्रात काल ४ मील तक घूमना अच्छा है। हम कितनी दूर तक चल सकते हैं, इस बात की परीक्षा न लेना ही अच्छा है। हमारा उद्देश्य अपनी कार्यकर्त्री शक्ति को बढ़ाना है, न कि दूरी को बढ़ाना। घूमने का यही प्रधान उद्देश्य भी है।

अगर कोई आदमी बहुत मोटा है, या उसका मांस बहुत मुलायम है, तो कसरती-चहलकदमी से उसकी तोंद घटने लगेगी, कम हो जायगी। अगर आप बहुत दुबले हैं तो घूमने से आपकी भूख बढ़ेगी और कुछ दिनों में आपका वजन भी बढ़ जायगा। यद्यपि घूमना शुरू करने के एक या दो हफ्ते तक आपका वजन

पाठ इक्कीसवाँ

रोग परीक्षा।

यों तो शरीर में बहुत सी नाड़ियाँ हैं, किन्तु रोग का विशेष ज्ञान कराने वाली—सुख दुःख एवं जीवन-मरण का ज्ञान कराने वाली, हाथ के अंगूठे के नीचे की धमनी नामक नाड़ी है। वात पित्त और कफ के विकार का प्रभाव धमनी नाड़ी की गति पर पड़ता है, अतः इसकी गति से वातादि की अधिकता या न्यूनता का अनुमान लगा लिया जाता है। शौचादि से निवृत्त व्यक्ति की नाड़ी को तीन अंगुलियों से तीन बार स्पर्श करना चाहिए। पहली अंगुली से वात, दूसरी से पित्त और तीसरी से कफ का ज्ञान होता है। जब वात का प्रकोप होता है तो नाड़ी जोंक और सर्प की गति से चलती है। पित्त-प्रकोप में काक या मेंढक के समान चलती है और कफ का कोप होने पर कबूतर की चाल से-मन्दगति से-चलती है। सन्निपात(त्रिदोष) की नाड़ी कभी मन्द चलती है कभी तेज चलने लगती है। जब मनुष्य को ज्वर आदि की सम्भावना हो तो भलीभाँति दोषों को जानकर उनकी शान्ति का उपाय करना चाहिए।

पित्त ज्वर, सन्निपात और चेचक रोग में नाड़ी समान हो सकती है। परन्तु सन्निपात में थोड़ी-थोड़ी देर में बदलती रहती है— कभी तेज हो जाती है कभी मन्द। नाड़ी प्रधानतया वात पित्त कफ की क्षीणता और अधिकता को ही सूचित करती है। अतएव रोग के विशेष ज्ञानार्थ अन्य प्रकार से भी रोग की परीक्षा

निउमोनिया का आक्रमण होने पर किसी कुशल चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए। यह रोग यदि बिगड़ जाता है तो क्षय का रूप धारण कर लेता या शीघ्र प्राण लेकर पल्ला छोड़ता है।

पाठ चौबीसवाँ

मोतीझरा

मोतीझरा भी एक कष्टसाध्य और संक्रामक रोग है। मोती-ज्वर, मनारखी, पानीझरा, छलरा, मियादी बुखार; ये इसके पर्याय हैं; अंग्रेजी भाषा में इसे टाइफाइड फीवर कहते हैं। यह रोग ३ वर्ष से लगाकर १८ वर्ष तक के बालकों को विशेषतया होता है, युवक और बूढ़ों को भी कभी-कभी हो जाता है। इससे कभी-कभी रोगी अत्यन्त दुःख पाता है, यहाँ तक कि उसका जीवन संकट में पड़ जाता है। जहाँ [illegible] आदि रस फलों का उपयोग बहुतायत से होता है, वहाँ इसका अधिक प्रकोप होता है। यह वर्षा के अन्त में, क्वार में, आश्विन और चैत्र मास में प्रायः होता है। अन्यान्य समयों में भी हो सकता है।

पहले-पहल बुखार होता है, फिर प्रायः चौथे दिन [illegible] दाना सरसों के बराबर मोती जैसे चमकीले छाती पेट और गर्दन से प्रारम्भ हो कर धीरे-धीरे पिंडली तक उतर आते हैं। [illegible] और [illegible] की [illegible] चमक की ओर, या दोनों की [illegible] अधिक कष्ट होता है।

इससे दम्पति में, विशेषतया स्त्री में अत्यन्त दुर्बलता आ जाती है। दुर्बलता के कारण क्षय के कीटाणु शीघ्र ही आक्रमण कर बैठते हैं। अतएव इस विनाशक प्रथा का शीघ्र ही अन्त होना आवश्यक है। संतान को दीर्घजीवी बनाने के इच्छुक माता-पिता को बच्चों का कच्ची उम्र में कदापि विवाह न करना चाहिए।

खांसी इस रोग का लक्षण है। एक बार खांसी प्रारम्भ होकर कुछ दिन बाद मिटती जाती है, पर उसका ठसका बराबर बना रहता है। साधारण खांसी की औषधियों से वह खांसी नहीं मिटती, अलबत्ता थोड़े समय के लिए स्थगित हो जाती है और फिर ज्यों की त्यों हो जाती है। बहुधा शीत ऋतु में प्रतिश्याय प्रारम्भ होकर क्रमशः वृद्धिगत होता जाता है और साथ ही खांसी होती है। चिकित्सा करने से प्रतिश्याय ठीक हो जाता है पर खाँसी का ठसका शीत ऋतु के अन्त तक बना रहता है। रोगी इस धोखे में रहता है कि ग्रीष्म ऋतु आते ही खांसी मिट जायगी पर ग्रीष्म ऋतु आने पर वह और भी उग्र हो जाती है। इसी समय अन्यान्य लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं। कफ पानी में डूब जाय अथवा जलाने पर मुर्दा जलने सी गंध आए तो क्षय का आक्रमण समझना चाहिए।

सामान्यतः पचीस-तीस वर्ष की आयु तक स्वस्थ मनुष्य का वजन बढ़ा करता है पश्चात् बहुत वर्षों तक सम रहता है, परिमाण में वैषम्य नहीं होता। यदि युवा व्यक्ति का शरीर-भार दिनोंदिन क्षीण होता जाय तो हाल में काला समझना चाहिए। क्षय रोग में शरीर का वजन न्यून होता चला जाता है।

सदा थकावट का रहना शारीरिक और मानसिक श्रम करने की इच्छा न होना, शरीर टूटना, तबीयत में विशेष प्रकार

सकतीं। जब कफ में कीटाणु पाये जावें, फुफ्फुसों की परीक्षा से क्षय के विशेष लक्षण प्रतीत होने लगें, रोगी शय्याश्रित हो जावे, तीव्र ज्वर रहे तब रोग बढ़ा हुआ समझना चाहिए। इस दशा में रोग के अच्छे होने की अधिक सम्भावना नहीं रहती।

रक्षा के साधन

आज तक किसी चिकित्सापद्धति ने क्षय रोग की अमोघ औषधि का आविष्कार नहीं कर पाया है। तथापि प्रबलतम प्रतिकार करते रहना मनुष्य का धर्म है। यदि आयुकर्म बलवान हो और श्रेष्ठ साधन मिल जावें तो किया हुआ परिश्रम सफल हो सकता है।

क्षयी को ऐसे मकान में रहना चाहिए जहाँ वायु के गमनागमन में प्रतिबन्ध न हो। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ठण्डी वायु के झोंकों और लू से सदैव बचाव रखना आवश्यक है, रोगी के निवासस्थान में सूर्य का प्रकाश पहुँचना चाहिए और वह चूने से पुता रहना चाहिए। शीत स्थान से सहसा उष्ण में और उष्ण से शीत में जाना हानिकारक है। इस रोग से रक्षा करने के लिए कुछ और बातें स्मरण रखने योग्य हैं।

(१) पहली और मूल बात यह है कि यह रोग दुर्बलों को अधिक सताता है। हमें सदैव ऐसे कार्य करना चाहिए जिनसे हृष्टपुष्ट रहें। स्वास्थ्यरक्षक नियमों का कदापि अतिक्रमण न करना चाहिए।

(२) क्षयी को फर्श, दीवारों या अन्य स्थानों पर जहाँ-तहाँ थूँकना योग्य नहीं है। अनुभवियों का कथन है कि पानी भरे हुए पीकदान में थूँकना चाहिए और शीघ्र ही कफ की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि उसके कीटाणु फैलने न पावें।

पारा एक ही स्थान पर नहीं रहता। इससे यह अनुमान किया गया कि एक ही स्थान के वायुमण्डल का दबाव भी सदा एक ही सा नहीं बना रहता। यदि वायुमापक यन्त्र न होता तो इस बात का किसी को सन्देह भी न होता।

जैसे जैसे इस ओर मनुष्यों का ध्यान आकर्षित होने लगा वैसे वैसे वायुमापक-यन्त्र के और और गुण भी मालूम होने लगे। वायुमापक यन्त्र से इस बात की भी सूचना मिलने लगी कि मौसिम साफ रहेगा या आंधी-पानी की सम्भावना है। जब हवा शान्त और साफ रहती है तब वायुमापक यन्त्र का पारा ऊँचा रहता है और जब तूफानी हवा रहती है तथा पानी बरसता है तब उसका पारा नीचे उतर आता है। इसका कारण यह है कि हवा में मिली हुई भाफ जब पानी बनकर हवा से अलग हो जाती है तब वायुमण्डल का दबाव घट जाता है। इससे पारा नीचे उतरता है।

किसानों तथा नाविकों के लिए वायु-मापक यन्त्र बहुत उपयोगी है। पहले किसानों को पानी और हवा के आसार जानने के लिए और-और चिह्न देखने पड़ते थे। किन्तु ऐसा करने से उनका मतलब बड़ी कठिनाई से हल होता था। पर अब इस यन्त्र के सहारे यह काम सहज ही हो सकता है। इसी प्रकार पहले जब नाविक समुद्र में रहता था तब उसे कुछ पता न रहता था कि तूफान कब किस ओर उठेगा? वह तूफान से बचने के लिए पहले से कुछ भी सावधानी न कर सकता था। किन्तु अब वायु-मापक यन्त्र के द्वारा इसकी सूचना पहले ही से मिल जाती है। क्योंकि जब तूफान उठने को होता है तब वायुमापक यन्त्र का पारा बहुत

और शुष्क' (Dry and fine) शब्द लिखे रहते हैं।

वायुमापक यन्त्र वायुमण्डल का दबाव तो बतलाता ही है, इसके सिवाय समुद्र तट से किसी भी स्थान की ऊँचाई भी बतलाता है।

ऊपर दिखलाया गया है कि वायुमापक यन्त्र की नली के पारे का उतार-चढ़ाव वायुमण्डल के दबाव पर आश्रित है। यदि हम वायुमापक यन्त्र को किसी ऊँचे स्थान पर ले जावें तो पारे के उतार-चढ़ाव से हम बतला सकते हैं कि समुद्र के धरातल से हम कितने ऊपर हैं। यदि यह मान लिया जाय कि वायुमापक यन्त्र का पारा समुद्र तट पर ३० इञ्च पर रहता है और यदि हम किसी ऊँचे पहाड़ पर पारे को २० इञ्च पर देखें तो हम कह सकते हैं कि एक तिहाई वायु-मण्डल नीचे रह गया। समुद्रीय तट का धरातल सब ओर एकसा है। इस कारण जहाँ-जहाँ वायुमापक यन्त्र का पारा २० इञ्च पर रहे वे सब स्थान एक सी ऊँचाई पर समझने चाहिए। यह भी अनुमान किया गया है कि समुद्र तट के पास की हवा, अपने आयतन के बराबर पारे से १२००० हिस्से हलकी है। इसलिए वायु-मापक यन्त्र में एक इञ्च पारे के उतार-चढ़ाव से हवा के १२००० इञ्च अथवा १००० फुट का अन्तर पड़ेगा। ऊपर की हवा, नीचे की हवा से विरल रहती है। इस कारण यदि हम वायुमापक यन्त्र को बहुत ऊँचे स्थान पर ले जायँ तो हमारा यह नियम ठीक-ठीक नहीं उतरता। पर, हाँ कुछ ही कमी-बेशी आजाती है।

ठीक हिसाब लगाने के लिए विद्वान् लोग वायुमापक यन्त्र के साथ एक उष्णता-मापक यन्त्र और कुछ बीजगणित एवं

यश या नामवरी उसकी होती है, उसकी स्पर्द्धा सब को होती है। कौन ऐसा होगा, जो अपने वैभव, अपनी विद्या या योग्यता से औरों को अपने नीचे रखने की इच्छा न करता हो! शांति का एक मात्र आधार केवल चारु चरित्र वाले में अलबत्ता यह नहीं देखा जाता। वह यह कभी नहीं चाहता कि चरित्र के पैमाने में, अर्थात् चरित्र क्या है, इसकी नाप जोख में, कोई दूसरा हमारे आगे न बढ़ने पावे।

कार्य कारण का बड़ा घनिष्ट संबंध है। इस सूत्र के अनुसार देश या जाति का एक व्यक्ति संपूर्ण देश या जाति की सफलता का कार्य का कारण है, अर्थात् जिस देश या जाति में एक-एक मनुष्य अलग अलग अपने चरित्र के सुधार में लगे रहते हैं, वह समग्र देश का देश उन्नति की अंतिम सीमा तक पहुँच सकता का एक बहुत अच्छा नमूना बन जाता है। नीचे-से नीचे कुल में पैदा हुआ हो, बहुत पढ़ा-लिखा भी न हो, बड़ा सुभीते वाला भी न हो, न किसी तरह की कोई असाधारण बात उस में हो, किन्तु चरित्र की कसौटी में यदि वह अच्छी तरह कस लिया गया है, तो उस [illegible] मनुष्य का सम्मान और आदर समाज में कौन ऐसा [illegible] होगा, जो न करेगा, और ईर्ष्यावश उसके महत्व को मुक्त कंठ से स्वीकार न करेगा? नीचे दर्जे से ऊँचे का पहुँचना [illegible] चरित्र की कसौटी से बढ़कर और कोई दूसरा जरिया नहीं है। [illegible] धीरे-धीरे बहुत देर में ऊपर का [illegible] पर यह निश्चित है कि चरित्रवान में [illegible] है वह एक न एक दिन अवश्य समाज का अगुआ मान लिया जायगा। [illegible] कसूर × × × × आदि सब [illegible] पर [illegible] ऊँचा-ऊँचा मनुष्यों के 'गुरो-गुरो'

बिना स्वार्थ-त्याग के किसी प्रकार की उन्नति और किसी प्रकार की सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। मनुष्य को सांसारिक विषयों में भी उसी हिसाब से सफलता होगी जिस हिसाब से वह अपने डाँवाडोल तथा गड़बड़ पाशविक विचारों का संहार करेगा, और अपने मन को अपने प्रयत्नों और उपायों पर स्थिर करेगा, तथा अपने प्रण को दृढ़ता प्रदान करता हुआ स्वावलम्बी होगा। वह अपने विचारों को जितना ही उन्नत करता है उतनी ही अधिक मनुष्यता, दृढ़ता, और धर्मपरायणता प्राप्त करता है और उसकी सफलता भी उतनी ही अधिक सराहनीय होती है। ऐसे श्रेष्ठ मनुष्य की उन्नति चिर काल तक स्थिर रहती है और वह धन्य होता है।

इस बात को हृदयङ्गम कर लो कि संसार लालची, असत्य-वादी, कपटी, क्रूर और दुष्ट को सहायता नहीं देता, जैसा कि ऊपरी दृष्टि से मालूम पड़ता है। संसार उसी को सहायता देता है जो सत्यवादी, धार्मिक और परोपकारी है। युग-युगान्तरों के महात्माओं और योगियों ने इस सिद्धान्त की पुष्टि भिन्न-भिन्न शब्दों में की है। इस बात का प्रमाण प्राप्त करने के लिए इस पाठ को पढ़ लेना ही पर्याप्त नहीं है, परन्तु पाठक को स्वयं निरन्तर अपने विचारों को उन्नत करके अपने आपको धर्मात्मा और परोपकारी बनाना चाहिए।

बुद्धिमत्ता कैसे प्राप्त होती है? विद्या, मनुष्य जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य के ज्ञान को प्राप्त करने के हेतु अपने सम्पूर्ण विचारों को केन्द्रित करना बुद्धिमत्ता का कारण है। किसी किसी समय बुद्धिमत्ता के साथ अहङ्कार, मिथ्याभिमान और लालसा के दर्शन होते हैं, परंतु इसके कारण वह नहीं है जो बुद्धिमत्ता के हैं।

सब्ज बाग का झांसा दिया था ? किस मृगतृष्णा में ला डाला मायाविनी ? छोड़ छोड़, मैं तो यहीं मरा जाता हूँ—यहीं समाप्त हो रहा हूं। मैंने छोड़ा, पछताता हूँ-मेरी जान छोड़। मैं यहीं पड़ा रहूंगा। भूख और प्यास सब मंजूर है। हाय! वह कैसी कुघड़ी थी जब मैंने प्यारी शान्ति का हाथ छोड़, उससे पल्ला छुड़ा, उसे धक्का मार, अन्धे की तरह—नहीं नहीं पागल की तरह तेरे पीछे भागा था ? कैसी मति मारी थी, कैसी मत गंवाई थी ! कहां है मेरी शान्ति ? कुछ भी तो पता नहीं है—जीती भी है या मर गई!

क्या करता। तेरी मोह भरी चितवन, उन्मादक मुस्कराहट, और दिल को लोटपोट करने वाली चपलता ने मुझे मार डाला। मुझ पर, मेरे दिल पर, मेरी शान्ति पर, इन सब ने डाका डाला। शान्ति छूटी, सुख छूटा, आराम छूटा, अब भी दौड़ बन्द नहीं ? अब भी मंजिल पूरी नहीं? तूने कहा था, यहाँ एक करोड़ स्वर्गों का निचोड़ा हुआ रस सड़कों पर छिड़का जाता है। तूने कहा था, यहाँ शान्तियों की ढलाई का कारखाना खुला हुआ है। तूने कहा था, सुख के सात समुद्र भरे पड़े हैं। तूने कहा था, अमर का यहां अजर लवि रहा है। तेरे इतने प्रलोभनों में यदि मैं भटक गया तो भगवान् मेरा अपराध क्षमा करें। यहां तो मार्ग ही मार्ग है-मंजिल का कहीं ठिकाना नहीं है। क्या जाने कहीं है भी या नहीं।

प्यास के मारे कण्ठ चिपक गया है। जीभ तालू से सट गई है। घर के कूप का ठंडा जल था उसे छोड़ अमृत के लोभ से निकला, [illegible] रूखा सूखा रहा घर में पेट भर रोटियां तो थीं— जैसा

मी थीं— मोहनभोग के लोभ में गधे की तरह वे छोड़ दीं, अब भूख के मारे आँखें निकल रही हैं । चटाई का बिछोना क्या बुरा था? सिंहासन कहाँ है । चलते-चलते पैर टूट गये हैं । यह बीहड़ मैदान, रेगिस्तान, नदी नद, तालाब, झील, जंगल, घन, नगर, पहाड़, गुफा खोह, ऊबड़ खाबड़—ओफ बराबर तय किये आ रहा हूं! अभी और उँगली उठ रही है । तेरी तेज़ी बराबर जारी है । तू नहीं थकी? पसीना भी नहीं आया? होश हवाश कायम है? भीषण सुन्दरी! तू कौन है? वही आगे की उँगली उठा रही है । 'थोड़ी दूर और है' यही तेरा मंत्र है । बढ़ी चली जा रही है आंधी और तूफान की तरह । छोड़ दे, मेरी उँगली को छोड़ दे, नहीं तो मैं उँगली काट डालूंगा । थोड़ी दूर हो या बहुत दूर हो, बस मुझ से नहीं चला जाता । घुटने छिल गये, खाल पक गये । पेट कमर में लग गया । कमर धरती पर झुक गई । अब भी दया नहीं— अब भी आराम नहीं । रहने दे, मैं यहीं आराम करूंगा यहीं मरूंगा।

लौट ही जाता । शायद शान्ति मिल जाती । पर ! पर ! पर ! लौटने का ठिकाना किधर है और आ किधर से रहा हूँ— कुछ भी तो नहीं मालूम । दौड़ा दौड़ आ रहा हूँ— इधर देखा न उधर । आज से आ रहा हूं? जन्म समाप्त हो चला । सारा समय मार्ग में ही बीत गया— फिर भी कहती है— 'थोड़ा और ।' लौटने दे । पर लौटने का समय ही कहाँ है? घर बहुत दूर है । उसको बाद जवानी से बुढ़ापे तक की है । अब बूढ़ा तो हो गया—जवानी अब कहां से आवेगी? अब लौटना व्यर्थ है । असम्भव है । तब? तब क्या यहीं मरना होगा? यहीं मार्ग में, कांटे और पत्थरों से भरी [illegible] में हिंसक जन्तुओं से भरे जंगल में? हे भगवान,

जवानी से बुढ़ापे तक, दौड़ने-मरने-सब कुछ त्यागने का-यही-यही-यही फल मिला ! हाय !

क्या कहा ? मंजिल आ गई ? कहाँ ? किधर ? देखूं ! इतना क्यों हँसती है ! मुझे हँसना अच्छा नहीं लगता । ठहर । क्या सचमुच मंजिल आ गई ? यह जो तारा सामने चमक रहा है-वहीं क्या हमारा गन्तव्य स्थान है ? पर वह तो अभी दूर है । वहाँ तक पहुँचने की ताब कहाँ है ? और पहुँच कर वह भोग भोगने की शक्ति भी कहाँ रह गई ! रहने दे । अब एक पग भी न चलूंगा । चला भी न जायगा । इसका कोई उपयोग नहीं । पहुँचना ही कठिन है और पहुँच कर उसका उपभोग करना तो और भी कठिन— असम्भव है । भोग का समय, आयु, शक्ति, सब इस मार्ग में समाप्त हो गई । अब क्या उस भोग को लालच की दृष्टि से- तरसते मन से— देखने को वहां जाऊं ? यह तो और भी कष्ट होगा । रहने दे, अब वहां जाने का कुछ भी आकर्षण नहीं रहा । तुम अक्षययौवना हो, किसी अक्षययौवन को पकड़ो । और मैं तो यहीं इसी मार्ग में मरा ! हे भगवान् आज शान्ति मिलती ! आशा ! आशा ! तुम जाओ—जाओ ! हाय ! मैं मरा ! ऐं ! ऐं ! क्या कहा ! यहां सब थकान व्याधि मिट जायगी ! शान्ति भी मिल जायगी ! नहीं ! ऐसा ! अच्छा चल । पर कितनी दूर है ! है तो सामने ही न ! अच्छा और चार पग सही— चल चल ।

भी थीं— मोहनभोग के लोभ में गधे की तरह वे छोड़ दीं, अब भूख के मारे आँखें निकल रही हैं । चराई का बिछौना क्या बुरा था ? सिंहासन कहाँ है । चलते-चलते पैर टूट गये हैं । यह बीहड़ मैदान, रेगिस्तान, नदी नद, तालाब, झील, जंगल, वन, नगर, पहाड़, गुफा खोह, ऊबड़ खाबड़—ओफ़ बराबर तय किये आ रहा हूं ! अभी और उंगली उठ रही है । तेरी तेज़ी बराबर जारी है । तू नहीं थकी ! पसीना भी नहीं आया ! होश हवास कायम है ? मोहिनी सुन्दरी ! तू कौन है ? यही आगे को उंगली उठा रही है । ' थोड़ी दूर और है ' यही तेरा मंत्र है । बढ़ा चला जा रहा है आंधी और तूफान की तरह । छोड़ दे, मेरी उंगली का छोड़ दे, नहीं तो मैं उंगली काट डालूंगा । थोड़ी दूर हो या बहुत दूर हो, अब मुझ से नहीं चला जाता । घुटने छिल गये, बाल पक गये । पेट कमर में लग गया । कमर धरती पर झुक गई । अब भी दया नहीं— अब भी आराम नहीं । बढ़ने दे मैं यहीं आराम करूंगा यहीं मरूंगा ।

लौट ही जाता । शायद शान्ति मिल जाती । पर ' घर ! घर ! लौटने का ठिकाना किधर है और आ किधर से रहा हूँ— कुछ भी तो नहीं मालूम । दौड़ा दौड़ आ रहा हूं— इधर देखा न उधर । आज से आ रहा हू ? उम्र समाप्त हो चली । सारा समय मार्ग में ही बीत गया— फिर भी कहती है— ' थोड़ा और । ' लौटने दे । पर लौटने का समय ही कहाँ है ? घर बहुत दूर है । उसकी राह अजानी से पुकारे तक की है । अब बूढ़ा तो हो गया—अजानी [illegible] है । [illegible] और [illegible] [illegible] अनादि-

जवानी से बुढ़ापे तक,दौड़ने-मरने-सब कुछ त्यागने का-यही-यही-यही फल मिला ? हाय !

क्या कहा ? मंजिल आ गई ? कहाँ ? किधर ? देखूँ ? इतना क्यों हँसती है ! मुझे हँसना अच्छा नहीं लगता । ठहर । क्या सचमुच मंजिल आ गई ? यह जो तारा सामने चमक रहा है-वही क्या हमारा गन्तव्य स्थान है ? पर वह तो अभी दूर है । वहाँ तक पहुँचने की ताब कहाँ है ? और पहुँच कर वह भोग भोगने की शक्ति भी कहाँ रह गई ! रहने दे । अब एक पग भी न चलूँगा । चला भी न जायगा । इसका कोई उपयोग नहीं । पहुँचना ही कठिन है और पहुँच कर उसका उपभोग करना तो और भी कठिन— असम्भव है । भोग का समय, आयु, शक्ति, सब इस मार्ग में समाप्त हो गई । अब क्या उस भोग को लालच की दृष्टि से- तरसते मन से— देखने को वहाँ जाऊँ ? यह तो और भी कटु होगा । रहने दे, अब वहाँ जाने का कुछ भी आकर्षण नहीं रहा । तुम अक्षययौवना हो, किसी अक्षययौवन को पकड़ो । और मैं तो यहीं इसी मार्ग में मरा ! हे भगवान् आज शान्ति मिलती ! आशा ! आशा ! तुम जाओ—जाओ ! हाय ! मैं मरा ! प ! ए ! क्या कहा ! वहाँ सब थकान व्याधि मिट जायगी ! शान्ति भी मिल जायगी ! नहीं ! ऐसा ! अच्छा चल । पर कितनी दूर है ! है ना सामने ही न ! अच्छा और चार पग सही— चल चल

-- ❧ --

भी थी— मोहनभोग के लोभ में गधे की तरह ये दौड़ रहीं, धा
धूप के मारे आँखें निकल रही हैं । चढ़ाई का बिछौना कब
धुला था ? सिंहासन कहाँ है । चलते-चलते पैर टूट गये हैं
यह बीहड़ मैदान, रेगिस्तान, नदी नद, तालाब, झील, जंगल
वन, नगर, पहाड़, गुफा खोह, ऊबड़ खाबड़—ओफ़, बराबर तय
किये जा रहा हूं ! अभी और उँगली उठ रही है । तेरी तेज़ी
बराबर जारी है । तू नहीं थकी ! पसीना भी नहीं आया ! हांफ
[illegible] कायम है ? [illegible] ! तू कौन है ! यही आगे को
उँगली उठा रही है । 'थोड़ी दूर और है' यही तेरा मंत्र है ।
नहीं चली जा रही है आंधी और तूफान की तरह । छोड़ दे, मेरी
उँगली को छोड़ दे, नहीं तो मैं उँगली काट डालूंगा । थोड़ी दूर
हो या बहुत दूर हो, बस मुझ से नहीं चला जाता । घुटने छिल
गये, बाल पक गये । पेट कमर से लग गया । कमर धरती पर
झुक गई । अब भी दया नहीं— अब भी आराम नहीं । रहने दे,
मैं यहीं आराम करूंगा यहीं मरूंगा ।

लौट ही जाता । शायद शान्ति मिल जाती । पर ! पर ! पर !
लौटने का ठिकाना किधर है और जा किधर रहा हूँ— कुछ
भी तो नहीं मालूम । दौड़ा दौड़ जा रहा हूँ— इधर देखा न उधर ।
व्यर्थ में जा रहा हूं ? उम्र समाप्त हो चली । सारा समय मार्ग
में ही बीत गया— फिर भी कहती है— 'थोड़ा और ।' लौटने
दे । पर लौटने का समय ही कहां है ! घर बहुत दूर है । उसको
राह जानने में बुढ़ापे तक की है । अब बूढ़ा तो हो गया—जवानी
[illegible] ' [illegible] है । [illegible] है! तब!
[illegible] और [illegible]

जवानी से बुढ़ापे तक,दौड़ने-मरने-सब कुछ त्यागने का-यही-यही-यही फल मिला ? हाय !

क्या कहा ? मंजिल आ गई ? कहाँ ? किधर ? देखूँ ? इतना क्यों हँसती है ! मुझे हँसना अच्छा नहीं लगता । ठहर । क्या सचमुच मंजिल आ गई ? यह जो तारा सामने चमक रहा है-वहीं क्या हमारा गन्तव्य स्थान है ? पर वह तो अभी दूर है । वहाँ तक पहुँचने की ताब कहाँ है ? और पहुँच कर वह भोग भोगने की शक्ति भी कहाँ रह गई ! रहने दे । अब एक पग भी न चलूँगा । चला भी न जायगा । इसका कोई उपयोग नहीं । पहुँचना ही कठिन है और पहुँच कर उसका उपभोग करना तो और भी कठिन— असम्भव है । भोग का समय, आयु, शक्ति, सब इस मार्ग में समाप्त हो गई । अब क्या उस भोग को लालच की दृष्टि से- तरसते मन से— देखने को वहाँ जाऊँ ? यह तो और भी कष्ट होगा । रहने दे, अब वहाँ जाने का कुछ भी आकर्षण नहीं रहा । तुम अक्षययौवना हो, किसी अक्षययौवन को पकड़ो । और मैं तो यहीं इसी मार्ग में मरा ! हे भगवान् आज शान्ति मिलती ! आशा ! आशा ! तुम जाओ—जाओ ! हाय ! मैं मरा ! ऐं ! ऐं ! क्या कहा ! वहाँ सब थकान व्याधि मिट जायगी ! शान्ति भी मिल जायगी ! नहीं ! ऐसा ! अच्छा चल । पर कितनी दूर है ! है तो सामने ही न ! अच्छा और चार पग सही— चल चल ।

— ❧ —

पाले वैराग्य को बुलाया। उसने आयुधशाला में आकर विरति नामकी भेरी बजाई। भेरी का शब्द सुनते ही समस्त सामंत समर के लिए सानन्द सन्नद्ध हो गये। उनमें दस धर्म, संयम, दस प्रायश्चित्त, बारह तप, पांच आचार, नौ ब्रह्मचर्य, तेरह चरित्र, पांच समिति, तीन गुप्ति, ध्यान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय-ज्ञान, और केवलज्ञान आदि बड़े-बड़े राजा थे जो कामदेव रूपी हस्ती के लिए सिंह के समान, पूर्ण बलवान्, और शत्रु का गर्व खर्व करने वाले थे। इनके सिवा धर्मध्यान के साथ निर्वेग, शुक्लध्यान के साथ उपशम, अठारह हजार भेद रूप राजाओं से राजित शीलराज, आदि भी जिन-सैन्य में सम्मिलित हो गये। सब के पीछे प्रचण्ड पराक्रमी महाराज सम्यक्त्व चल रहे थे। अनुपम पराक्रमधारी समस्त सुभटों के एकत्र सम्मिलित होने से महाराजाधिराज जिनेन्द्र का कटक अत्यन्त शोभित हुआ। उस समय सैन्यमण्डल में दुर्धर, उन्नत, दुर्जय और चपल मन को वश करने वाले जीव के स्वाभाविक गुण रूपी तुरंगों के खुरों से उड़ी हुई धूलि से समस्त आकाशमण्डल ढंक गया। प्रमाण और सप्तभंगी रूप मत्त मतंगों के चीत्कार से दिग्गजों को भय होने लगा। स्याद्वाद भेरी की गर्जना से तथा पांच समिति और पांच महाव्रतों के व्याख्यान रूप शब्दों से मनुष्यों के कान बधिर हो रहे थे।

इस प्रकार चतुरंग सेना से चहुं ओर शोभायमान, अनुप्रेक्षा रूपी सुदृढ़ कवच तथा शास्त्ररूपी निर्मल मुकुट से मंडित, सिद्ध-ध्यान स्वरूप अमोघ तीक्ष्ण अस्त्र से अलंकृत, और समाधिरूप तलवार हाथ में लिये हुए भगवान जिनेन्द्र सम्यक्त्व-द्वारा

निराकरण कर दिया। बहुत देर उलझा-उलझी होने पर अंत में सम्यक्त्व ने परमार्थ का खड्ग फेंककर देखते देखते मिथ्यात्व को धराशायी कर दिया। राजा मकरध्वज की सेना में हाहाकार मच गया। जब मिथ्यात्व के काम तमाम होने का हाल उसकी नरकगति और वैतरणी नामक स्त्रियों को विदित हुआ तो वे बिलख बिलख कर रोने लगीं।

मिथ्यात्व के बाद मोह सामने आया और वीरवर केवलज्ञान से मुठभेड़ करने पर उतारू होगया। उभय पक्ष के योद्धा फिर आमने सामने आकर मोर्चों पर डट गये। पाँच इन्द्रियाँ, पाँच महाव्रतों के, आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म तथा शुक्लध्यान के; तीन शल्य तीन योगों के, सात भय, सात तत्त्वों के, और राग द्वेष, क्षमा के आगे आये। उस समय महाराज जिनेन्द्र ने शकुन-शास्त्री सिद्धस्वरूप से पूछा—"सिद्धस्वरूप! पहले हमारी सेना का मानभंग क्यों हो गया था?" सिद्धस्वरूप ने कहा—"आपका सैन्य उपशम श्रेणी रूप मैदान में युद्ध कर रहा था। वहाँ बहुत से बलवान शत्रु छिपे बैठे थे वह युद्ध के योग्य स्थान न था। इसी से मानभंग हो गया। अब क्षपक श्रेणी के मैदान में युद्ध हो रहा है। यहाँ शत्रुओं के छिपने की जगह नहीं है। जो शत्रु सामने आते हैं वही यमलोक को चले जाते हैं। अब निश्चय ही आपकी विजय होगी"

इधर यह बातचीत हो रही थी उधर मोहराज तथा केवलज्ञान की ठन गई। मोह ने मिथ्यात्व प्रकृति रूपी तीन बाण छोड़े, केवलज्ञान ने रत्नत्रय रूपी तीन बाणों से उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसके बाद अनुपम योद्धा केवलज्ञान ने समाधि-ध्यान में बैठ कर उपशम बाण चलाया तो मोह जमीन पर जा रहा। थोड़ी देर में वह फिर सँभल गया और केवलज्ञान पर प्रमाद रूपी पैने

हीरों की वर्षा करने लगा। केवलज्ञान ने छह आवश्यक तथा तेरह प्रकार के चारित्र रूपी हीरों की वर्षा से उसकी वाणवर्षा रोकी और फुर्ती से निर्ममत्व नामक बाण छोड़ा कि मोह का धनुष खंड-खंड हो गया। जब मोह ने केवलज्ञान पर आठ मद रूपी मदोन्मत्त मतंग पेल दिये तो केवलज्ञान ने निर्मद हाथियों से उन्हें हटा दिया। मोह ने क्रुद्ध हो देव मनुष्य और भुजंगों को फँसाने वाली पृथ्वी और सागर को चलायमान करने वाली धारावली छोड़ी। जिनराज की सेना के सुभट उसे देख कर थर-थर काँपने लगे पर सुभटशिरोमणि केवलज्ञान जरा भी विचलित न हुआ। उसने शीघ्र ही पाँच प्रकार के चारित्र रूप दिव्य शस्त्रों से उन्हें चूर-चूर कर डाला और मोह को मूर्छित कर दिया। जब मोह की मूर्छा दूर हुई तो वह अनाचार तलवार को हाथ में लेकर झपटा। केवलज्ञान ने भी अपने हाथ में अनुकम्पा रूप तलवार ले ली और मोह के मारने हटकर निर्ममत्व रूप मुद्गर का उसके सिर में ऐसा प्रहार किया कि सिर फट गया और चीत्कार करता हुआ जमीन पर आ रहा।

मदन महाराज के निरंजन और मोह दोनों योद्धा सफल न हुए तो उन्हें बड़ा खेद हुआ और वह खेद क्रोध रूप में बदल गया। उसने कहा— "जिनके अपने पैने बाणों से सुर असुर तक का मान मर्दन किया, जिसकी आज्ञा के सामने बड़े-बड़े इन्द्र भी नम्र हो जाते हैं, देखो मैं चक्रवर्ती क्या अल्प शक्ति वाले जिनेन्द्र को नीचा दिखाऊँगा! मैं अभी उसका गर्व खर्व कर डालता हूँ।" इतना कहकर मनरूपी मतंग पर आरूढ़ होकर महाराज मकरध्वज अनुराग बाजे बजवाकर समरांगण में उपस्थित हुए। जिनेन्द्र से बोले— जिन! पहले मेरे सामने आओ फिर

राज को दुःख देने लगीं । जिनराज ने अपनी निर्जरा नामक विद्या का स्मरण किया। उसने आते ही सब कामदेव की विद्याओं को मार भगाया । इसके बाद मनःपर्यय ज्ञान आया और जिनेन्द्र से कहने लगा— प्राणनाथ ! विवाह का समय समीप आ गया है । विलम्ब न करके मोह को शीघ्र ही निःशेष कीजिए, उसका अन्त होते ही कामदेव स्वयं भाग जायगा ।

इधर किसी प्रकार हिम्मत करके मोह, जिनेन्द्र के आगे आया । किन्तु पुनः शिरोमणि शुक्लध्यान क्रोध से दांत पीसता हुआ मोह के सामने आ डटा । और अपने चार भेदरूपी तीक्ष्ण बाणों से खण्ड खण्ड कर गिरा दिया । मोह की मृत्यु होने पर जिनेन्द्र सेना के हर्ष का ठिकाना न रहा। अपनी दुर्दशा देख मकरध्वज घबड़ाता भागा । राजा जिनेन्द्र ने धर्मध्यान रूपी बाण को धनुष पर चढ़ाया और वक्षस्थल में ऐसा प्रहार किया कि वह मूर्छित हो गया । जिनराज की सेना ने उसे मजबूती से जकड़ लिया। 'मुंडे मुंडे मति भिन्ना' होती है । किसी ने जिनेन्द्र से कहा— कामदेव को प्राण दण्ड देना चाहिए, किसी ने कहा काला मुंह करके गधे पर चढ़ाना चाहिए । कामदेव की रति और प्रीति दोनों स्त्रियां छोड़ देने की प्रार्थना करने लगीं । अन्त में जिनेन्द्र ने यह निर्णय किया कि कामदेव को सिद्धशिला, सर्वार्थसिद्धि आदि देवों में प्रवेश न करने दिया जाय ।

पाठ इक्तीसवाँ

दर्पण

चित्राङ्कण-चित्र लेखन। ललित-मनोहर। ओज-तेज। कलौंस-काला-दाग। नीरव-शब्द हीन। अम्लान-हरा। सौम्यता-मनोहरता।

क्यों हमेशा दर्पण लिए बैठे रहते हो? क्या तुम्हें कोई और काम नहीं रहता? भाई, तुम्हारी यह नित्य की दर्पण लीला देख कर मुझे बारबार यह भजन याद आ जाता है—

"मुखड़ा क्या देखे दरपन में।
तेरे दया धरम नहिं तन में।"

दर्पण, शायद, तुम इसलिए देखते होगे कि यह तुम्हें 'सुन्दर' होने का भ्रम प्रदान किया करता है। तुम अपने को सुन्दर मानते भी होगे, सौन्दर्य का तुम्हें अभिमान भी होगा। पर क्या तुमने कभी वास्तविक सौन्दर्य पर भी विचार किया है? न किया होगा। किया होता, तो आज तुम्हारे निर्मल हाथ में यह कांच का टुकड़ा न होता।

तुम्हें अपना सौन्दर्य ही देखना है तो उसे प्रकृति के दर्पण में क्यों नहीं देखते? चले जाओ प्रकृति के शीश महल में। वहीं तुम अपने लावण्य और माधुर्य का यथेष्ट चित्राङ्कण कर सकोगे। वहां तुम चन्द्र-किरणों में अपना नित्य-नूतन दिव्य कांति का आभास पाओगे। अरुणोदय की प्रभा में तुम अपने ललित कपोलों की स्वच्छ लालिमा देखोगे। कमल की मंद विकसित कलियों में

सुन्दर और रसीली आँखें देखने को मिलेंगी। प्रेम-परता में तुम्हें अपने अरुण और सरस ओंठ दिखायी देंगे। अनिर्वचनीय सुखानुभूति में उलझ कर तुम अपनी घुँघराली अलकें सुलझाने लगोगे। उस दर्पण में तुम अपने को नित्य किशोर और नित्य-सुन्दर पाओगे। यह नकली दर्पण तो उसी क्षण तुम्हारे हाथ से छूट कर गिर पड़ेगा।

पाठ बत्तीसवाँ

जिनवाणी

छिटी—प्रचलित हुई, फैली। अघ—पाप। विभाता—प्रभात। उषा—भोर, सूर्योदय से कुछ पहले का समय। द्युति—कान्ति, प्रकाश। गह्वर—गुफा। कान्तार—बीहड़ रास्ता। अम्बर—आकाश। धरा—वसुधा। दर्शिनि—दर्शन करने वाली।

तीर्थंकर की सुता दुलारी,
जग-जीवों की माता प्यारी,
वसुधा की सन्तत हितकारी,
उपकृत है तुझसे जग सारी,
विचरो और सदा विहरो तुम हे माँ! देश विदेश ॥१॥

जननी तू है विश्व-तारिणी,
कर्म-कोप-मद-दल संहारिणी,
जन्म-मरण-सन्ताप-हारिणी,
भक्तजीव-मुनि-मन-विहारिणी,
करदे नष्ट जगज्जीवों के, करुणामयि ! सब प्रदोष ॥ २ ॥

धन-वैभव की हृदय-हीनता,
भोगों की आत्मिक-मलीनता,
आशा की दयनीय दीनता,
सुख-दुख की स्थिरता-विहीनता,
समझाकर करदे तू जग को, माता ! मोह-विमुक्त ॥ ३ ॥

उषा-काल के खिले सुमन पर,
जल-तरंग पर हिमालयगण पर,
वृहत्-गगन पर तारागण पर,
तम पर, द्युति पर, त्रिविध पवन पर,
दर्शन, ज्ञान, चरित्र लिखे हों मां ! सत्पद्-करुण ॥ ४ ॥

सरिता में, सरवर, सागर में,
गिरि, गह्वर में, नगर-नगर में,
डगर-डगर में वसुधा भर में,
जल-थल में अनन्त अम्बर में,
एक बार हो उठे पुनः मां ! तेरा ही जय-घोष ॥ ५ ॥

स्वार्थों पर ममता जय पावे,
मिथ्या की मां मारी जावे,
सुख की घटा फिर घहरावे.

माँ ! कषाय दल पीठ दिखाये,
दोषदलिनि ! प्राणी समूह को, करदे अब निर्दोष ॥ ६ ॥

पाठ ३३ वाँ

वन्य कुसुम

पराग– फूलों की रज। पँखड़ियाँ–पुष्प का दल, पखड़ी। सिक्त–सींचा हुआ, तर–गीला।

(१)

निरख अरण्य-पुष्प के चरणों में पानी की बूँद,
विस्मित होकर हेतु सोचता था जब आँखें मूँद।
एकाएक पड़ी कानों में मधुमय मृदु झंकार।
"ध्यान मग्न मानव करता है तू क्या सोच-विचार।"

(२)

मैंने कहा कि 'इसी पुष्प को दुखी देख है खेद–
इसकी जीवन-पोथी में यह कैसा दुःपरिच्छेद? ॥"
"बड़ा कष्ट है बन्धु" पुष्प ने कहा त्याग निःश्वास।
"मिला कहीं हो कंटक कुल को मेरे द्वारा त्रास ॥"

(३)

गन्ध न पाकर लौट गये हो शायद वायु प्रवाह।
मिला न हो पराग भ्रमरों को सधा न नेह निवाह ॥

भौंर-से अलक उतै नागिन फुंकार है।
  या को न एक रदन भारी कुरूप बदन,
दाने-से रदन उतै शोभत अपार है।

आँखिन न ज्योति रही तन में न द्योति रही,
  ऐनक की ज्योति उतै आनन के द्वार है;
या के सब ढीले अंग देह में नाहिं रंग,
  राजत अनंग उतै शोभते उदार है॥

(२)

फूलत है डाँढ़ जात कर्नों से करत बात,
  यौवन के भार उतै कटि बल खाती है;
कामराज छिपत में लट पर आ लगत मे,
  आनन से काम उतै अति बिकसाती है।

भौंहें इत हीवर से चितन के आकर से,
  आँखिन कमानवान उत परखाती है।
अंगन ना बच्यों और मृत्युपद पकरो रोग,
  आनन की ज्योति उतै मधुरा लखाती है॥

(३

धीरहि से पैर देत साँसनि उसाँस लेत,
  ऐनक की चाल उतै चौकरी भरत है,
भौंर-से करत बात बोले में लरखरात,
  बातिन में बाल उतै मन को हरत है।
कातिन कुरूप कुर दीखत अनीक पुर,
  भामिनि-सी श्याम उतै बाल दिखरत है,

(४)

करना धर्मप्रचार जगत में रख अपना उद्देश,
कभी न होने दे तू अपने मन में द्वेष प्रवेश।
मूल भलाई मत औरों की होजा तू निस्वार्थ,
पीछे पर मत कभी हटाना करने में परमार्थ॥

(५)

तू है कौन? कहाँ से आया? क्या है सब में सार?
इन बातों पर सब से पहले कर ले खूब विचार।
पर नारी का सपने में भी आने दे मत ध्यान,
सत्य मान तू-निश्चय होगा तब तेरा कल्याण॥

(६)

दुर्जन दुष्ट हठी लोगों का त्याग सर्वथा सङ्ग,
सत्थान सज्जन पुरुषों के सीख सभी तू ढंग।
द्वेषभाव दे छोड़ सभी से मीठी बोली बोल,
चाहे जो हो-मत खोला कर औरों की तू पोल॥

(७)

संकट देख सामने अपने कभी न कहना 'हाय,'
धीरज धरके उसे झेलना साहस उर में लाय।
भग्न-मनोरथ हो कर भी तू श्रम करना मत छोड़,
सारी विषय-वासनाओं से अपना मुख ले मोड़॥

(८)

यहाँ वहाँ से उत्तम उत्तम मँगवाकर अखबार,
अच्छे-अच्छे लेख लिखाकर हफ्ते में दो चार।
लिख-लिख शिक्षापूर्ण पुस्तकें पूर्ण कर साहित्य,
'सरस्वती के सुखद भवन में क्रीड़ा कर तू नित्य॥

(९)

कुछ भी तू ने अगर दिया है इन बातों पर ध्यान,
अल्प काल में हो जायेगा तो सुज्ञान महान॥
रे अल्पमति के कोश नहीं तो इस दुनिया के बीच-
तन अपना अनमोल गँवाया रहा नीच का नीच॥

पाठ ३६ वाँ

मौन महिमा

(१)

हे मौनिते! मङ्गलकारिणी तू, शीलेश्वरी शान्तिविहारिणी तू।
विरोध विद्वेष निवारिणी तू, विवाद घाती विष-हारिणी तू॥

(२)

योगी यती साधु समाधिमान, की योग्यता तू सब में प्रधान।
तेरे बिना शीघ्र पलायमान, होते स्वयं हैं सब ज्ञान ध्यान॥

(३)

है अज्ञ की तू जड़ता छिपाती, तू विज्ञ की भी ममता दिखाती।
संवाद होता उनका जहां है, मध्यस्थ होती झट तू वहाँ है॥

(४)

कथा-कलापी सब के प्रलापी, होते नहीं जो चुप हैं कदापि।
शोकार्त हो वे जब क्षुब्ध होते, हैं पास तेरे निज दुःख रोते॥

(५)
आश्चर्य से विस्मित हो खड़े जो, आतंक से स्तंभित हो खड़े जो।
आराधते हैं तुमको स-मान, रक्षा उन्हें तू करती प्रदान ॥

(६)
तू ही कभी प्रीति-कथा सुनाती, तू ही कभी सम्मति भी दिलाती।
तू ही दया की प्रतिरिक्त आली, तू ही दया की प्रिय सख आली ॥

(७)
नहीं कभी तू रसना हिलाती, तथापि सद्भाव सभी बताती।
स्वदृष्टि द्वारा स्वविचार सारे, चित्तस्थ है तू करती हमारे ॥

(८)
विनाशिनी तू अपवाद की है, विच्छेदिनी वाद विवाद की है।
कृतज्ञ तेरे सविशेष भारी, संसार में हैं नर और नारी ॥

(९)
पैशुन्य से जो नर चित्तहारी, बातें बनाते रहते सदा ही।
निःशब्द जो तू उनको बनाये, तो लोक आनन्द अनल्प पाये ॥

(१०)
जो काम का नाम कभी न लेते, हैं किन्तु उन्मादक सीख देते।
हों भक्त तेरे यदि वे अभागे, तो भाग्य जागे परिताप भागे ॥

(११)
हैं धर्म का मर्म न जानते जो, तथापि धर्मार्थ बखानते जो।
तेरा धरें ध्यान सदैव जो वे, तो लोक-कल्याण अवश्य होवे ॥

(१२)
जो शक्ति तेरी सब जानते हैं, जो सिद्धि तेरी शुभ मानते हैं।
तेरा नहीं वे व्रत छोड़ते हैं, तेरा नहीं वे व्रत तोड़ते हैं ॥

पाठ ३७वाँ

प्रकीर्णक पद्य

जिनवर आनन-भान निहारत, भ्रम तम घान नसाया है ॥ टेक ॥
वचन-किरन प्रसरन तैं भविजन-, मन-सरोज सरसाया है ।
भवदुख कारन सुख विसतारन, कुपथ सुपथ दरसाया है ॥ जि० ॥
विनसाई कज जल सरसाई, निशिचर समर दुराया है ।
तसकर प्रबल कषाय पलाये, जिन धन-बोध चुराया है ॥ जि० ॥
लखियत उडु न कुभाव कहूँ अब, मोह उलूक लजाया है ।
हंस कोक को शोक नश्यो निज-, परिनति चकवी पाया है ॥ जि० ॥
कर्म बंध-कज कोप बंधे चिर, भवि अलि मुंचन पाया है ।
"दौल" उजास निजातम अनुभव, उर जग अन्तर छाया है ॥ जि० ॥

मेरो मन ऐसी खेलत होरी ।

मन मिरदंग साज करि त्यारी, तन को तमूरा बनो री ।
सुमति सुरंग सरंगी बजाई, ताल दोउ कर जोरी ॥
राग पांचों पद को री ॥ मेरो० ॥ १ ॥

समकित रूप नीर भर झारी, करुना केशर घोरी ।
ज्ञानमयी लेकर पिचकारी, दोउ कर माहिं सम्हारी ।
इन्द्रि पांचों सखि बोरी ॥ मेरो० ॥ २ ॥

चतुर दान को है गुलाल सो, भरि भरि मूठि चलाओ री ।
तप मेवा की भरि निज झोरी, यश को अबीर उड़ाओ री ।
रंग जिनधाम मचाओ री ॥ मेरो० ॥ ३ ॥

"दौज" आज खेलें मस होरी, भव-भव दुःख टलो री।
भरना जो इक श्रीजिन को री, जग में लाज हो तो री॥
मिले फगुआ शिव गोरी॥ होरी० ॥४॥

पाठ २८ वाँ

अनुनय-विनय

(१)

सेवा हम करते जायेंगे, तुम अंगीकार करो न करो।
आराध्य तुम्हें जब जाना है,
तब तुम पर क्या रिस लाना है,
सेवा सब तरह बजाना है,
चाहे स्वीकार करो न करो॥
सेवा हम करते जायेंगे, तुम अंगीकार करो न करो॥

(२)

नित निर्धनता से लड़ना है,
जातीय भवन को गढ़ना है,
पल-पल पर ऊँचे चढ़ना है,
तुम भी कुछ ईंट धरो न धरो।
सेवा हम करते जायेंगे, तुम अंगीकार करो न करो॥

(५)

शुभ स्वावलम्बन का सुपथ सबको दिखाया आपने,
दृढ़ आत्मबल का मर्म भी सबको सिखाया आपने।
समता सभी के साथ सब दिन आपकी रहती रही;
इस हेतु सेवा आपकी निश्शङ्क मही करती रही॥

(६)

यद्यपि अहिंसा धर्म सबने श्रेष्ठतम माना सही,
पर वास्तविक इसके विधानों को कभी जाना नहीं।
किस भाँति करना चाहिए जग में अहिंसा धर्म को,
अतिशय सरल करके दिखाया आपने इस मर्म को॥

(७)

करके कृपा यदि अवतरित होते न भू पर आप तो,
मिटता नहीं संसार का इस काल में भवताप तो।
निष्काम हो निष्काम होकर शान्ति के सुख धाम हो,
योगीन्द्र भोगों से रहित गुणहीन हो गुण-धाम हो॥

(८)

जय जय महावीर प्रभो! जग को जगाकर आपने,
संसार के हिंसा-जनित भय को भगाकर आपने
इस लोक को सुरलोक से भी परम पावन कर दिया,
भगवान आकर विश्व को प्रज्ञान का सागर किया॥

संख नाल से सेत, कतहुँ चांदी के रंगा ।
हलुक होइ बिनवारि, हंस घन छन छन भंगा ॥
उड़त पौन के साथ मेघ सन नभ मध छाजत ।
नृप समान चहुं ओर चँवर डोलत से राजत ॥
धोरे नील सुरंग, अकास अब लगै सुहाई ।
दुपहरिया के खिलत भूमि छाई अरुनाई ॥
पकत धानि की बालि खेत सब लखियत गोरे ।
लखि तरुनन के चित होय अब उमँग न थोरे ॥
डोलत मन्द बयार डार फुनगी कछु झूमत ।
छके किये मधुपान भ्रमर फूलन जनु चूमत ॥
खिले फूल के गुच्छ लसत पल्लव कछु सोहैं ।
सरद माहि कचनार लाल सब कर मन मोहैं ॥
भूषन पहिरि जड़ाय खिलत नभ महँ जब तारे ।
छुटत मेघ अति बिमलचंद निज बदन उघारे ॥
लसत बिमल अँग अंग जोन्ह की उज्जल सारी ।
पावत दिन दिन रैन मनहु स्यामा कोउ नारी ॥
उड़त [illegible]दर हारील चोंच सन पकरत कीरा ।
बगक सारस यूथ बैठि नाचत मिलि तीरा ॥
चकवाक उत चलत हंस कूजत मद भरि इत ।
परी कमल की धूरि सरित माहैं सब कर चित ॥

पाठ ४२ वाँ

अलि-पतन

(१)

दुरित कालिमाकलित निशा का हुआ शीघ्र अन्तिम अवसान।
प्रकट प्रभायुक्त प्राची में उदित हुआ रवि-तेज महान्॥
ललित-लालिमा-स्वर्ण-रश्मिमय फैला प्रचुर प्रभातप्रकाश।
मनु प्रभा लखि जिन-रवि की ज्यों स्फुरित होता आत्मविकाश॥

(२)

मन्द मन्द सुरभित मारुत नव प्रेम प्रमोद बढ़ाता था।
या निःस्वार्थ लोक-सेवा का शुभ सन्देश सुनाता था॥
कल-रव करते विहग-वृन्द शुचि मधुर रागिनी गाते थे।
प्रेम-पंथ का मानव-जग को जागृत हृदय दिखाते थे॥

(३)

चिर-विछुरे सम्मित-प्राण मनुजों के ज्यों मन मुदित हुए।
सूर्य-रश्मि संयोग मात्र से त्यों पंकज थे खिले हुए।
हाय निठुर भाग्य ने निष्ठुर हो पंकज को तोड़ लिया।
कलिका का संचित प्राण हर दुःसहनीय वियोग दिया॥

(४)

हे आनन्द निमग्न रसिक अलि, मरी आह! या सूचक हुआ।
कठिन कष्ट अरे परमावधि सून विलोक आश्चर्य हुआ॥
[illegible] मे मग्न [illegible] कैसा यह व्यवहार हुआ।
[illegible] बनाना [illegible] समझ [illegible] गुआ॥

आन्दोलन हो अखिल गगन में।
बढ़े तिमिर चहुँ दिशि क्षण-क्षण में॥

होवे वातावरण विकम्पित, हो थर-थर तृण-पात।
होवे यदि इस भू पर उस क्षण, भीषण वज्राघात॥

तो कुछ हाहाकार न हो।
भू पर कहीं दरार न हो॥
पुष्प-समान वज्र को सहले।
वज्र-पात से तनिक न दहले॥

× × . ×

घिरें जब उस नभ में घन घोर।
मचावे महा भयानक शोर॥
नाच करे अशान्ति घन-घन में।
भार्त्तनाद हो हो क्षण-क्षण में॥
धधक रही हो आग गगन में।
तिमिर व्याप्त होवे कण-कण में॥

उमड़ा हो परिताप-पयोदधि, हो अजस्र आघात।
हो यदि इस भू पर उस नभ से, जलद-अग्नि-अज-पात॥

तो उस क्षण भू फट जावे।
टूक टूक झट हो जावे॥
दहले तो इस जग से दहले।
पर वह वज्र खुशीसे सहले॥

+ × +

न समझे कुछ भी अपना क्लेश।
न हो फिर उससे चिन्तित लेश॥

जो चाहौ चटक न घटै, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये, नेह-चीकने चित्त ॥ ३ ॥
नरकी अरु नलनीर की गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचो ह्वै चलै तेतो ऊँचो होय ॥ ४ ॥
इहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ऐहै बहुरि बसन्त रितु इन डारिन वे फूल ॥ ५ ॥
कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय।
या खाये बौरात है, या पाये बौराय ॥ ६ ॥
को छूट्यो इहि जाल परि, कत कुरङ्ग अकुलात।
ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यो चहत, त्यों-त्यों उरझत जात ॥ ७ ॥
दिन दस आदर पाय कै करिलै आपु बखान।
जौलौं काग सराध-पख, तौलौं तो सनमान ॥ ८ ॥
चले जाहु ह्याँ को करत हाथिन को ब्योपार।
नहिं जानत-या पुर बसत धोबी और कुम्हार ॥ ९ ॥
दीरघ सांस न लेइ दुख, सुख साईं नहिं भूल।
दई-दई क्यों करत है, दई-दई सु कबूल ॥ १० ॥

पाठ ४५ वाँ

भारत-सुत

वहो! नव युग धर, प्रिय छात्र वृन्द!
भारत हृद-नन्दन, आनन्द कन्द!

पीन जाने पर हुये ये दीन हैं॥
या पथिक ये लोक-लोचन कह रहे-
हम तपस्वी हैं सभी दुख सह रहे,
गिन रहे दिन ग्रीष्म-वर्षा-शीत के,
काल-ताल-तरङ्ग में हम बह रहे।
मौन हैं, पर पतन में, उत्थान में,
वेणु-वर-वादन-निरत-विभु-गान में,
है छिपा जो मर्म उसका समझते,
किन्तु तो भी हैं उसीके ध्यान में॥
आह! कितने विकल जन-मन मिल चुके,
खिल चुके, कितने हृदय हैं हिल चुके,
तप चुके वे प्रिय व्यथा की आग में,
दुःख उन अनुरागियों के मिल चुके॥
क्यों हमारे ही लिए ये मौन हैं?
पथिक! ये कोमल कुसुम हैं-कौन हैं?॥

पाठ ४७ वाँ

नाम-निर्णय

कवित्त

जगत में एक एक जन के अनेक नाम,
एक एक नाम देखिए अनेक जन में।

ऐल फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेल पेल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत, जिमि,
धारा पर पारा पारावार यों हलत है॥

(२)

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस-देस के।
नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि,
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के॥
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारे हुते कमठ करारे फूटे,
केरा कैसे पात बिहराने फन सेस के॥

(३)

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि,
कीन्ही सिवराज बीर अकह कहानियाँ।
भूषन भनत तिहुँ लोक में तिहारी धाक,
दिल्ली औ बिलाइति सकल बिललानियाँ॥
आगरे अगारन हैं फाँदती कगारन छ्वै,
बांधती न बारन मुखन कुम्हलानियाँ।
कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं,
बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानियाँ॥

(४)

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहन वारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।

पर कामिनी को मुख-चन्द्र चितै, मुह ढाँकि सदा यह टेव गहै ।
धनि जीवन है तिन जीवन को, धनि माय उनै उर माय वहै ॥

(३)

जे पर-नारि निहारि निलज्ज, हँसैं बिगसैं बुधि-हीन बड़ेरे ।
जूठन की जिमि पातर पेखि, खुसी उर कूकर होत घनेरे ॥
है जिनकी यह टेव वहै, तिनको इस भौ अपकीरति है रे ।
ह्वै परलोक विषैं दृढ़-दण्ड, करैं शत-खण्ड सुखाचल केरे ॥

(४)

द्वेष निवास हिया-भुवनों दिन, क्रोध-पिशाच डरै न टरैगो ।
कोमल भाव उपाय बिना, यह मान-महामद कौन हरैगो ॥
आर्जव-सार कुठार बिना, छल बेल-निकन्दन कौन करैगो ।
तोष शिरोमनि मंत्र पढ़े बिन, लोभ-फणी-विष क्यों उतरैगो ॥

(५)

जो धन-लाभ लिलार लिख्यो, लघु दीरघ सुकृत के अनुसारै ।
सो लहि है कछु फेर नहीं, मरु देश के ढेर सुमेर सिधारै ॥
घाट न बाढ़ कहीं वह होय, कहा कर आवत सोच विचारै ।
कूप किधौं भर सागर मैं नर, गागर मान मिलै जल सारै ॥

(कवित्त)

(६)

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

स्वर्ग की सुखमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार!

(२)

खोलता इधर जन्म लोचन,
मूँदती उधर मृत्यु क्षण, क्षण ;
अभी उत्सव औ' हास-हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छ्वास!
अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश।
सिसक उठता समुद्र का मन,
सिहर उठते उडुगन!

(३)

अहे निष्ठुर परिवर्तन!
तुम्हारा ही ताण्डव-नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन!
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन!

(४)

जगत का अविरत हृत्कम्पन
तुम्हारा ही भय-सूचन,
निखिल-पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण
विपुल-वासना विकच विश्व का मानस-शतदल

ऐ अनन्त-हृत्कम्प ! तुम्हारा अविरत-स्पन्दन
सृष्टि-शिराओं में सञ्चारित करता-जीवन ;
खोल जगत के शत शत नक्षत्रों से-लोचन ,
भेदन करते अन्धकार तुम जग का क्षण , क्षण;
सत्य तुम्हारी राज-यष्टि , सम्मुख नत त्रिभुवन ,
भूप , अकिञ्चन,
अटल-शान्ति नित करते पालन!

(७)

तुम्हारा ही अशेष व्यापार ,
हमारा भ्रम , मिथ्याहङ्कार ;
तुम्हीं में निराकार साकार ,
मृत्यु-जीवन सब एकाकार !
अहो महाम्बुधि ! लहरों-से शत लोक , चराचर ,
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर ;
तुङ्ग-तरङ्गों-से शत युग, शत कल्पान्तर
उगल, महोदर में विलीन करते तुम सत्वर :
शत-सहस्र रवि शशि , असंख्य ग्रह,उपग्रह ,उडुगण,
जलते , बुझते हैं स्फुलिङ्ग-से तुम में तत्क्षण;
अचिर विश्व में अखिल-दिशावधि, कर्म, वचन, मन,
तुम्हीं चिरन्तन
अहे विवर्तन-हीन विवर्तन !

पाठ ५५ वाँ

वीर मंगल विधान

(१)

पंक्ति नरेश नित मंडलि खगेश सत्व,
झुकत नम उमग पै मुकुट सुरेश के।
जीकी छबि देख फीकी कौमुदी परी है, मान-
खंडन भये हैं जहाँ कोटिन दिनेश के॥
धारक अनुज औ तारक सरोज के हैं,
विदारक सदा हैं अनेकन कलेश के।
सारन लगन ऐसे आनंद भरन ऐसे,
वंदन करत चरन चरम जिनेश के॥

(२)

पंकज वरन वारे सुखमा धरन वारे,
सतन को प्यारे औ 'सरोज' के सहारे हैं।
असरन सरन वारे कामां अघहरन वारे,
पापिन के झुन म भनक अघ टारे हैं॥
दुख के भगन वारे भवजन उद्धरन वारे,
पतित करन वारे जग के उधारे हैं।
दारिद हरन वारे कारज करन वारे,
संकट हरन हारे चरन तिहारे हैं॥